संगत संसार

संरक्षक : स. वीरेन्द्र सिंह जौहर

प्रबंधकीय मण्डल :

स. गुरुचरण सिंह गिल (अध्यक्ष)
श्री राकेश रिखी (मंत्री)
श्री विनोद गांधी (कोषप्रमुख)
श्री संतोष तनेजा (सदस्य)
स. रविन्द्रपाल सिंह (सदस्य)
श्री सुदर्शन सरीन (सदस्य)

संपादकीय मण्डल :

डॉ. कुलदीप अग्निहोत्री
डॉ. अवतार एस. शास्त्री
स. देविन्दर सिंह गुजराल
स. राजेन्द्र सिंह

संस्थापक : स्व. रमेश श्रोत्रिय

अनुक्रमणिका

- सम्पादकीय 4
- जत्थेदार बघेल सिंह 6
- 18वीं सदी का महानायक बंदा सिंह बहादुर 8
- वार भाई बलवंड जी एवं भाई सत्ता जी 9
- Ibrahim Khan Gardi 12
- शेर जरनैल सरदार हरि सिंह नलवा 14
- Captain Lakshmi 17
- Great Hero of India 23
- महाराजा रणजीत सिंह 27
- Battle of Haifa 29
- महाराजा हेमचन्द्र विक्रमादित्य 32
- महाराणा प्रताप 34
- नवाब कपूर सिंह 36
- संत सिपाही भाई महाराज सिंह जी 38

संगत संसार कार्यालय

4/49, W.E.A, सरस्वती मार्ग, करोल बागनई दिल्ली-110005
दूरभाष : 011-25728032 मो. 9958989011
email: sikhsangat@khalsa.com, sangatsansar@gmail.com
website : www.sangatsansar.com

तिलंग महला १

जैसी मै आवै खसम की बाणी तैसड़ा करी गिआनु वे लालो॥
पाप की जंञ लै काबलहु धाइआ जोरी मंगै दानु वे लालो॥
सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूडु फिरै परधानु वे लालो॥
काजीआ बामणा की गल थकी अगदु पड़ै सैतानु वे लालो॥
मुसलमानीआ पड़हि कतेबा कसट महि करहि खुदाइ वे लालो॥
जाति सनाती होरि हिदवाणीआ एहि भी लेखै लाइ वे लालो॥
खून के सोहिले गावीअहि नानक रतु का कुंगू पाइ वे लालो॥
साहिब के गुण नानकु गावै मास पुरी विचि आखु मसोला ॥
जिनि उपाई रंगि रवाई बैठा वेखै वखि इकेला ॥
सचा सो साहिबु सचु तपावसु सचड़ा निआउ करेगु मसोला ॥
काइआ कपडु टुकु टुकु होसी हिदुसतानु समालसी बोला ॥
आवनि अठतरै जानि सतानवै होरु भी उठसी मरद का चेला॥
सच की बाणी नानकु आखै सचु सुणाइसी सच की बेला ॥
(श्री गुरुग्रंथ साहिब अंग ७२२ श्लोक १४३०)

बारह माह माझ

मंघिरि माहि सोहंदीआ हरि पिर संगि बैठड़ीआह।
तिन की सोभा किआ गणी जि साहिबि मेलड़ीआह।
तनु मनु मउलिआ राम सिउ संगि साध सहेलड़ीआह।
साध जना ते बाहरी से रहनि इकेलड़ीआह।
तिन दुखु न कबहू उतरै से जम कै वसि पड़ीआह।
जिनी राविआ प्रभु आपणा से दिसनि नित खड़ीआह।
रतन जवेहर लाल हरि कंठि तिना जड़ीआह।
नानक बांछै धूड़ि तिन प्रभ सरणी दरि पड़ीआह।
मंघिरि प्रभु आराधाणा बहुड़ि न जनमड़ीआह॥
(श्री गुरु अर्जुनदेव जी रचित 'बारहमाह मांझ' से)

मघर महीने के माध्यम द्वारा गुरुजी कहते हैं, जो हरि प्रियतम के साथ बैठती हैं अर्थात् भजन करती हैं, वे शोभा पाती हैं। जिन्हें स्वामी ने मिलाया है। जिन्हें सन्त-रूपी सहेलियों का संग हुआ है, उनका तन, मन अकाल पुरख या राम द्वारा मोह लिया गया है, अर्थात् राममय हो गया है। जो संतों की संगति से अलग हैं, वे पति के बिना अकेली रहती है। इसीलिए उनका दुख कभी दूर नहीं होता। वे यमराज के वश में पड़ गई हैं। और जिन्होंने प्रभु को अपना समझकर स्वीकारा है, वे नित्य प्रभु-भजन में सावधान देखी गई हैं। उनके कण्ठ में रत्न, जवाहर, लाल-रूपी हरिनाम जड़ित है। नानक कहते हैं, जिन्हें प्रभु के द्वार पर शरण मिली है, मैं उनकी चरणधूलि चाहता हूँ। मघर माह द्वारा कहते हैं, जिन्होंने प्रभु की उपासना की है, वे जन्म के चक्रों से स्वतंत्र हो जाते हैं। ●

सम्पादकीय

उन अनाम योद्धाओं के नाम

– डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

देश पर मर मिटने वाले, मानवता के लिये समर्पित हो जाने वाले, परहित सर्वस्व त्याग देने वाले लोग दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो चर्चित हो जाते हैं। जिनकी यशपताका चहुँ ओर फहराती है। दूसरे वे जो अनाम होते हैं, जिन्हें कोई नहीं जानता। लेकिन उनका जीवन अनुकर्णीय होता है। योद्धा वही नहीं होता जो देश के लिये मरता है। योद्धा वह भी होता है जो देश के लिये जीता है। कई बार तो ऐसी परिस्थिति भी बन जाती है कि देश के लिये मरना आसान लगता है, देश के लिये जीने की साधना ज्यादा कठिन लगती है। सागर मंथन के समय निकली जहर का पान करने वाले महादेव शंकर अपने समय के सबसे बड़े योद्धा थे। पंजाब में गुरुओं का इतिहास ही कुर्बानी का इतिहास हैं। हाल के वर्षों को ही देखा जाये तो गान्धी, पटेल भी अपने वक्त के सबसे बड़े योद्धा थे। महाराजा हरि सिंह अपने वक्त के योद्धा थे जिनके कारण ही अंग्रेज लाख कोशिश करने पर भी जम्मू कश्मीर पाकिस्तान के हवाले नहीं कर सके। मास्टर तारा सिंह को कौन भूल सकता है जिन्होंने लाहौर की भरी सभा में नंगी तलवार लहरा कर गर्जना की थी कि पंजाब पाकिस्तान में नहीं जाने देंगे। कई बारे कुछ लोग अपने स्वार्थ के कारण इन योद्धाओं का अवमूल्यन करने का प्रयास भी करते रहते हैं। हाल में ही सरदार पटेल को लेकर उठा विवाद ऐसा ही है।

देश में सरदार पटेल की सबसे ऊँची मूर्ति स्थापित करने का निर्णय गुजरात सरकार ने पहले ही कर लिया था। इसके लिये देश के कोने-कोने से लोहा भी एकत्रित किया जा चुका है। अब इस प्रकल्प का क्रियान्वयन हो रहा है। सरदार पटेल की 182 मीटर की इस प्रस्तावित मूर्ति को एकता की प्रतिमा नाम दिया गया है। नर्मदा में एक टापू पर निर्मित की जाने वाली यह प्रतिमा अमेरिका में स्थित मुक्ति-प्रतिमा से आकार में दो गुना होगी। वैसे भी यह प्रतिमा विश्व की सबसे ऊँची प्रतिमा होगी। वैसे तो पिछले साल 31 अक्टूबर को गुजरात के तत्कालीन मुख्यमंत्री नरेन्द्र मोदी ने जब अपना यह संकल्प देश के लोगों के साथ साँझा किया था तो एक खास तबके में खलबली मंच गई थी और मीडिया के एक हिस्से में बहस शुरु करवा दी गई थी। सरदार पटेल की जब भी कोई बात करता है तो तुरन्त कुछ लोगों को लगने लगता है कि शायद यह पंडित जवाहर लाल नेहरु को नीचा दिखाने के लिये किया जा रहा है। उसके बाद दूसरा हल्ला राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को लेकर मचने लगता है। भाव कुछ इस प्रकार का होता है मानों सरदार पटेल की बात करने के पीछे संघ की योजना है और यह योजना भी नेहरु को नीचा दिखाने के लिये है। सरदार पटेल की प्रतिमा को लेकर भी इस प्रकार की बहस चल रही है। उसके तुरन्त बाद नेहरु के तथाकथित भक्तों की ओर से चिल्ल पों शुरु हो जाती है कि सरदार पटेल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के खिलाफ थे और उन्हीं के मंत्रालय ने तो संघ पर प्रतिबन्ध लगाया था।

एक बात समझ से परे है। नेहरु के वैचारिक प्रतिष्ठान के प्रति समर्पित लोग, उनके वैचारिक आधार को इतना पिलपिला क्यों मानते हैं कि आज पटेल की मृत्यु के पाँच दशक बाद भी, उसकी छाया से ही वह आधार हिलने लगता है? क्या नेहरु की कुल उपलब्धियों की नींव व उस पर बना भवन इतना कच्चा है कि पटेल की छाया मात्र से उसके तिरोहित होने का खतरा पैदा हो जाता है? एक बात और, यदि यह खेमा सचमुच यह मानता है कि सरदार पटेल संघ के सख्त विरोधी थे तो उनके इस तर्क की कीमत कितनी रह जाती है कि पटेल को उभारने का काम संघ कर रहा है? संघ अपने विरोधी को क्यों उभारेगा? पटेल और नेहरु में मतभेद बहुत ज्यादा थे, इसमें कोई शक ही नहीं है। भारत के प्रधानमंत्री का निर्णय कांग्रेस ने सरदार पटेल के पक्ष में ही किया था लेकिन महात्मा गान्धी ने नेहरु के पक्ष में अपनी राय दी। यह भी निर्विवाद है कि नेहरु का महात्मा गान्धी के चिन्तन में रत्ती भर भी विश्वास नहीं था। नेहरु ने इसको कभी छिपाया भी नहीं था। गान्धी के हिन्द स्वराज को नेहरु ने एक पत्र लिख कर स्पष्ट रुप से अप्रासांगिक बता दिया था। यह पत्र भी नेहरु ने गान्धी को ही लिखा था। नेहरु, पटेल और गान्धी की संगति में इतना सहज नहीं रह पाते थे जितना लार्ड माऊंटबेटन और लेडी मांऊंटबेटन की संगति में। उसका कारण उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि तो थी ही, ब्रिटेन की छाया में विकसित हुआ उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण भी था। यह दृष्टि ही पटेल से उनके मतभेदों का कारण थी। यह मतभेद ब्रिटिश आभिजात्य दृष्टि और भारतीय सांस्कृतिक दृष्टि का था। दरअसल जिस दिन गान्धी की हत्या हुई उस दिन भी पटेल अपना त्यागपत्र देने के लिये ही गान्धी के पास गये थे।

वास्तव में नेहरु और पटेल की भारत को लेकर दृष्टि अलग थी। नेहरु भारत को उसी दृष्टि से देखते थे जिस दृष्टि से अंग्रेज भारत को देखते थे। नेहरु कुलीन वर्ग के व्यक्ति थे। वे ब्रिटिश कुलीन वर्ग के साथ सहज रह पाते थे। अंग्रेज भी सांस्कृतिक दृष्टि से भारत को समझने की कोशिश कर रहे थे और नेहरु भी उसी प्रकार भारत को खोजने की कोशिश कर रहे थे। उनकी डिस्कवरी आफ इंडिया उनकी इसी खोज का परिणाम थी। इसके विपरीत गान्धी और पटेल जमीन से जुड़े आदमी थे। उनको भारत की खोज करने की जरुरत नहीं थी। भारत उनकी आत्मा में बसा था। अंग्रेजों के दो सौ साल के

शासन के कारण सांस्कृतिक स्तर पर दो भारत उभर आये थे। एक भारत वह था जो यहाँ का आम आदमी समझ पाता था। दूसरा भारत वह था जिसे अंग्रेजों ने बनाया और समझा था। इसके प्रतिनिधि नेहरु और माऊंटबेटन थे। इसमें कोई शक ही नहीं कि अंग्रेजों की इच्छा रही होगी कि उनके जाने के बाद भी भारत की बागडोर उसी के हाथों रहे जो भारत को लेकर गढ़ी गई ब्रिटिश अवधारणाओं का मुरीद हो। दूसरे भारत के प्रतिनिधि गान्धी और पटेल थे। यह गुत्थी अभी तक सुलझ नहीं पाई की नेहरु को प्रधानमंत्री बनाने के लिये गान्धी क्यों आमादा थे? शायद वे नेहरु दृष्टि और पटेल दृष्टि के समन्वय का नया प्रयोग कर रहे हों । हो सकता है गान्धी को यह भी डर हो कि पटेल तो उनकी बात मान जायेंगे लेकिन यदि नेहरु को प्रधानमंत्री न बनाया तो वे कहीं अपनी अलग पार्टी न बना लें, जैसे उनके पिता ने एक बार गान्धी से मतभेदों के चलते कांग्रेस छोड़ कर स्वराज पार्टी बना ली थी।

कारण चाहे जो भी रहा हो, लेकिन सरदार पटेल जल्दी ही समझ गये थे कि नेहरु जिस रास्ते पर चल रहे हैं वह जल्दी ही भारत को संकट में ही नहीं डालेगा बल्कि भारत की पहचान के लिये भी खतरा पैदा कर देगा। इसीलिये पटेल की पहल पर कांग्रेस ने प्रस्ताव पारित किया कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हो जाना चाहिये ताकि देश की सभी राष्ट्रवादी ताकतें मिल कर एक सशक्त भारत का निर्माण कर सकें। यदि पटेल संघ विरोधी होते तो यह प्रस्ताव पारित न होता।

अंग्रेजों को शायद यह भी अहसास होने लगा था कि नेहरु का महात्मा गान्धी से भी देश के आर्थिक विकास को लेकर निकट भविष्य में गहरा विवाद हो सकता है। हिन्द स्वराज को लेकर गान्धी और नेहरु के मतभेद प्रकट होने ही लगे थे। पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपया देना चाहिये, इसको लेकर महात्मा गान्धी ने जो मरण व्रत रखा था, उसके लिये गान्धी को उकसाने में लार्ड माऊंटबेटन का भी हाथ था। सारा ताना बाना इतनी खूबसूरती से बुना गया कि पटेल आदि को भनक न लग सके। माऊंटबेटन अपनी सामान्य बुद्धि से इतना तो जानते ही होंगे कि विभाजन के बाद दिल्ली के उत्तेजित वातावरण में गान्धी को इस प्रकार के काम के लिये उत्साहित करना घातक सिद्ध हो सकता है? क्या माऊंटबेटनभारत से जाने के पहले नेहरु का रास्ता साफ करनें जाना चाहते थे?

एक बात और ध्यान में रखनी चाहिये कि महात्मा गान्धी की हत्या का बहाना बना कर नेहरु ने केवल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को ही निपटाने की कोशिश नहीं की बल्कि हत्या की आड़ में सरदार पटेल को भी किनारे करने की कोशिश की गई। उन दिनों की अखबारों को यदि देखा जाये तो यह फुसफुसाहट भी चालू कर दी गई थी कि हत्या के लिये पटेल भी किसी न किसी रुप में जिम्मेदार है। पटेल इन आरोपों से काफी व्यथित भी थे। एक तीर से दो शिकार करने की यह पुरानी पद्धति थी। नेहरु के वैचारिक प्रतिष्ठान के स्वयंभू पहरेदार बार-बार चिल्लाते हैं कि पटेल ने ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबन्ध लगाया था। वे यह नहीं बताते कि यदि पटेल उस समय संघ पर प्रतिबन्ध लगाने का विरोधकरते तो शायद नेहरु के समर्थक गान्धी हत्या के लिये सीधे-सीधे पटेल को ही उत्तरदायी ठहराने लगते। जाँच के बाद जब पाया गया कि संघ का गान्धी हत्या से कोई सम्बंधनहीं है तो पटेल ने प्रतिबन्ध उठा भी लिया।

क्या यह संयोग ही नहीं है कि एक साल पहले गुजरात सरकार ने पटेल की प्रतिमा लगाने की घोषणा की, नेहरु समर्थकों में बेचौनी बढ़ने लगी, बहस शुरु हुई और मामला बढ़ते-बढ़ते इतना बढ़ा कि देश में सत्ता परिवर्तन ही हो गया। इस सत्ता परिवर्तन पर सबसे सटीक टिप्पणी भी ब्रिटेन के अग्रणी समाचार पत्र दी गार्जियन ने ही की, कि अब जाकर सचमुच अंग्रेज भारत से विदा हुये हैं। इतना तो सब मानते ही हैं कि अब तक मोटे तौर पर देश की सत्ता वैचारिक दृष्टि से नेहरुवादियों के हाथ में ही रही है। चाहिये तो यह था कि इस टिप्पणी पर खुली बहस होती और चैनलों में यह सुर्खी बनती। लेकिन उससे सब बच रहे हैं। सरदार पटेल की छाया से भी डरे सहमे लोग घूम फिर कर इसी को लेकर मिमियाना शुरु कर देते हैं, पटेल भी संघ विरोधी थे। यदि पटेल संघ विरोधी ही होते तो वे कश्मीर के महाराजा हरि सिंह के पास बातचीत करने के लिये संघ के तत्कालीन सरसंघचालक गोलवलकर को न भेजकर किसी कांग्रेसी को भेजते।

किसी भी व्यक्ति का पूर्वाग्रह से मुक्त होकर मूल्याँकन करना प्रशंसनीय है लेकिन खास रंग का चश्मा लगा कर किसी का यश भंजन निंदनीय ही कहा जायेगा। 1947 को जब भारत का विभाजन हुआ तो उस के परिणामस्वरूप लाखों लोग मारे गये। निर्दोषों को बचाने के लिये राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोगों ने अपनी जान जोखिम में डाल कर भी पाक क्षेत्रों से वहाँ फँसे हिन्दू सिखों को बाहर निकाला। इसका उल्लेख शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी ने तुरन्त बाद प्रकाशित अपनी एक पुस्तक में भी किया गया। वे उस समय के अनाम योद्धा थे। लेकिन बाद में उन्हें ही खलनायक बताया जाने लगा। इसी प्रकार दिल्ली में 1984 में हुये दंगों में अनेक लोगों ने अपनी जान की बाजी लगा कर सिक्खों की प्राण रक्षा की थी। लेकिन दुर्भाग्य से सरकार ने हत्यारों को ही बचाना शुरु कर दिया और उन लोगों को दुत्कारना, जिन्होंने अपने प्राणों की परवाह न करते हुये निर्दोष लोगों को बचाया था। बाद में तो हत्यारों को ही मंत्री पदों से पुरस्कृत भी किया जाने लगा। आज जब सरदार पटेल को लेकर बहस चल ही निकली है तो राष्ट्रीय योद्धाओं के पूरे प्रश्न को पुनर्मूल्यांकित किया जाना चाहिये। ***स.***

लाल किले पर केसरी झंडा लहराने वाला

शूरवीर, 'खालसा पंथ की शान'-'भारत का गौरव'

जत्थेदार बघेल सिंह

- स. चिरंजीव सिंह

अगम सूरवीरे उठे सिंह जोधा।
पकड़ तुर्क गण को करें वे निरोधा।। (उग्रदन्ती सवैये)

भाई ! क्या किसी ने सुना है कि सिखों का राज कभी दिल्ली पर रहा है? हमने यह तो सुना है कि सिखों के महाराजा रणजीत सिंह लाहौर के महाराजा थे। सारा पंजाब उनके अधीन था-परन्तु दिल्ली में कभी सिखों ने प्रवेश भी किया है यह हमारी जानकारी में नहीं हैं। इतिहासकार बोला-जी हां सुनिये एक समय दिल्ली में भी सिखों का प्रभुत्व रहा है। उन्होंने लालकिले पर खालसा का केसरी निशान झुलाया है। अर्थात् भारतीय परचम फहराया है। यह ऐतिहासिक कहानी इस प्रकार है।

श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज के संसार गमन (1708) के लगभग 55 वर्ष बाद पंजाब में मुगलों के अत्याचार चरम सीमा पर पहुंच गए। नादिरशाह दुरानी और अहमदशाह अब्दाली ने मुगलों से सत्ता प्राप्ति के लिए संषर्ष शुरु कर दिया।

1761 में पानीपत के युद्ध में मराठों की महान शक्ति को ध्वंस करने के बाद भी पंजाब में अहमदशाह अब्दाली के 6 और आक्रमण हुए। मुगलों की शक्ति को क्षीण करने के बाद अब्दाली ने सिखों को हमेशा के लिए नेस्तनाबूद करने का प्रण लिया। क्योंकि सिख उत्तरी भारत में एक महान शक्ति के रूप में उभर रहे थे। यह सिख ही थे जिन्होंने अहमदशाह अब्दाली के काफिले (जो पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों को हराने के बाद) पर हमला करके लूट लिया था और अब्दाली जिन 2000 हिन्दू लड़कियों को बंदी बनाकर अफगानिस्तान ले जा रहा था उनके चंगुल से छुड़ाकर वापस उनके अपने अपने स्थानों पर सुरक्षित पहुंचाया था।

अब्दाली ने सन् 1762 में अपने छटे आक्रमण में लाहौर पर हमला करके गुरसिखों से छीन लिया। सिख सरहिन्द की ओर कूच कर गए। इधर अब्दाली ने श्री अमृतसर में श्री हरिमंदिर साहिब को तोपों के गोले चलाकर जमीनदोज़ कर दिया। सरोवर और परिक्रमा को पशुओं और गायों की हत्या कर गंदा और बदबूदार बना दिया। मालेर कोटला (कुप) में बड़ा घल्लूघारा (**Big Hollocost**) हुआ। 30 हजार औरतों और बच्चों को मार डाला। परन्तु सिखों ने मन से हार नहीं मानी, उसके वापिस लाहौर लौटते ही सिखों ने श्री हरिमंदिर साहिब को साफ-सुथरा बनाकर दिवाली मनाने की घोषणा कर दी। अहमदशाह के हमले होते रहे। अन्त में थक हार कर सन् 1767 में वह सदा के लिए अपने देश अफगानिस्तान लौट गया। कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो गई।

उन दिनों में सिख-संघर्ष मुगलों और पठानों के विरुद्ध चल रहा था। सिख 12 मिसलों (जत्थों) में बंटे हुए थे। उनका कोई संगठन नहीं था। परन्तु शत्रु ने संकट आने पर एकत्र हो जाते थे, यह गुरमत्ता (संयुक्त विचार) की परम्परा थी। अमृतसर में एकत्र होकर मतभेद भुलाकर सांझे दुशमन के सामने एक जुट हो जाते थे। संकट समाप्त होने पर फिर कई छोटी मोटी बातों पर लड़ पड़ते थे।

बघेल सिंह का जन्म

पंजाब के ऐसे वातावरण में 1730 ईस्वीं में श्री अमृतसर जिले के झबाल कलां गांवों में एक असाधारण बालक का जन्म हुआ। इस बालक के पुरखों में प्रमुख भाई लंघा थे। उनके अधीन 84 ग्राम थे। भाई लंघा का एक भाई पारोशाह था। जो माता मागी के दादा थे। इस बालक का नाम बघेल सिंह रखा गया। जब मिसलों में अलग-अलग संघर्ष चल रहे थे उस समय बघेल सिंह अपनी जवानी में करोड़ सिंघियां मिसल में शामिल हो गया। उसने 1765 में करोड़ सिंघियां मिसल की बागडोर संभाली। उसका मुख्य मिसलदार बन गए। 12 हजार घुड़सवार लड़ाकू नौजवान उसके पास थे। सिख ताकत बढ़ रही थी। दिल्ली एवं यमुनापार तक उनको रोकने वाला कोई बड़ा शत्रु नहीं रह गया था।

प्रमुख मिसलों की स्थिति

1. **करोड़ सिंघिया मिसल** पूर्वी पंजाब में सक्रिय थी।

2. **शुकर चकिया मिसल**, रावी चनाब, गुजरांवाला में अपनी चरम सीमा पर थी।

3. **रामगढ़िया मिसल** अमृतसर एवं गुरदासपुर में सब दुशमनों पर भारी थी।

करोड़ सिंघिया मिसल के मुखिया **जत्थेदार बघेल सिंह** थे। उनके अधीन, अम्बाला, करनाल, रोहतक और जालंधर, दुआबा का इलाका था। सरदार बघेल सिंह चतुर और वाकपटुता में बेहद कुशल थे और सहज भाव से ही अपने विरोधियों को प्रभावित कर लेता था। मुगल रुहेले, यहां तक कि अंग्रेज भी उनकी मित्रता के चाहवान थे। बाबा बघेल सिंह पूर्ण गुरसिख थे। अमृत प्रचार वह युद्ध के दिनों में भी करते रहते थे।

करोड़ सिंघिया मिसल में 12 हजार घुड़सवार युद्ध में प्रवीन थे। दूसरी मिसलों के सहयोग से यह मिसल 40 हजार तक जा पहुंची। बघेल सिंह की करोड़ सिंघिया मिसल ने खुर्जा, मेरठ, शिकोहाबाद, आगरा, फरूखाबाद और दिल्ली के पास के इलाकों पर कब्जा जमा लिया। इन राज्यों के कबीलदारों और नवाबों से नजराने वसूल किए। सन् 1775 में सहारनपुर पर कब्जा जमाया जो रोहिलों का शक्तिशाली केन्द्र था। सन् 1774 में दिल्ली पर हमले शुरु कर दिए। शाहदरा पर अपना कब्जा जमा लिया।

17 जुलाई 1775 को यमुनापार कर पटपड़गंज पर अधिकार कर लिया। दिल्ली को लंबे समय तक घेरा डाला। इस अवधि में अपनी सैना की व्यवस्था घोड़ों की देखभाल, सेना के स्थाई खानपान का योग्य प्रबंध आदि करने के कारण कुछ समय के लिए दिल्ली के लाल किले पर हमला करने की योजना को टाल दिया। परन्तु मुगल राज के बाहरी इलाके पर अपना कंट्रोल बना दिखा लिया। लाल किले पर आक्रमण को सफल करने की तैयारी के लिए पहले हमले में गाजियबाद को अपने अधीन किया। अच्छा नजराना वसूल किया। अपनी वृत्तीय स्थिति की मजबूती हेतु श्री दरबार साहिब

अमृतसर में दसवंध (दशांस) भेजा और गुरु साहब का शुकराना (धन्यवाद) किया।

दिल्ली के इर्द-गिर्द यमुना पार के इलाके पर नजीबुल्दौला के पुत्र जबीता खान काबिज था। बघेल सिंह ने भंगी मिसल के सरदार राय सिंह और सरदार तारा सिंह को साथ लिया। यमुनापार इलाके पर आक्रमण किया। जबीता खान ने लाखों की बड़ी रकम व दिल्ली जीतने में साथ भी देने का भरोसा दिलाया। बघेल सिंह ने सब्जी मण्डी के पास एक चुंगी स्थापित कर दी। शहर में आने वाली हर वस्तु पर कर (Tax) वसूलना शुरु कर दिया। उधर 1776 में मुज्जफरनगर की लड़ाई में मुगल बादशाह शाह आलम को पराजित किया और सारा समय आस-पास के युद्धों में बिताया। एक मुगल सरदार अब्दुल खान और शहजादा फरखेड बखत ने मुगलों से छीने इलाकों को वापिस लेने के लिए बघेल सिंह पर हमला किया। परन्तु वह नाकामयाब रहे। इस प्रकार मिर्जा साफी ने सिखों की टुकड़ी जो इन्द्री में स्थापित थी। उस पर कब्जा कर लिया। तो सरदार बघेल सिंह ने शाहबाद के खलील बेग खान पर कब्जा करके उसके 800 जवान, तोपें, 300 घोड़े समेत जीत ली। सबको अपने साथ ले लिया।

लाल किले पर चढ़ाई

सरदार बघेल सिंह की नेतृत्व वाली सिख फौज का लाल किले पर घेरा कसता जा रहा था। 1783 में सिख फौज ने मल्का गंज और सब्जी मण्डी के इलाके को हथिया लिया। मिरजा शिकोह ने विरोध ता की। परन्तु मूंह की खाई। अगले दिन अजमेरी गेट पर कब्जा हो गया। इसी समय सौभाग्य से जस्सा सिह रामगढ़िया अपनी दस हजार की सेना लेकर बघेल सिंह की सहायता के लिए आ पहुंचा। लगभग 30 हजार की लड़ाकू गुरसिख की सैना लाल किले पर एक बड़ा हमला करने केलिए तैयार होने लगी। आज इस स्थान का नाम तीस हजारी पड़ गया है। क्योंकि आम जनतामें यही प्रसिद्ध था कि 30हजार सेना रुकी थी। अब यहां लोअर जिला कोर्ट भी है।

लाल किले में प्रवेश

10 मार्च 1787 को लालकिले पर एक प्रभावी संयुक्त हमला बोला गया। लाल किले के मजबूत दरबाजे बंद थे। फिर किसी गुप्तचर ने जानकारी दी कि पिछली तरफ दिवार कमजोर है परन्तु बाहर से पता नहीं चलता। फिर क्या था उसी तरफ फौज ने बड़े बड़े लकड़ के शतीरों से दीवार में एक मोरी (छिद्र) करके किले में प्रवेश किया। इस मोरी के कारण ही किले के पास के द्वार का नाम मोरीगेट चल पड़ा है। जो आज भी प्रचलित है।

किले में फौज का सामना करने वाला कोई नहीं था। इस किले के मुख्य द्वार पर केसरी झंडा निशान साहब लहराया गया। भारतवर्ष के लिए यह समाचार एक रोमांचकारी घटना थी। जिस दिल्ली में श्री गुरु तेगबहादुर जी को हजारों लोगों के बीच शहीद किया गया था। जहां बंदा बहादुर के 700 शूरवीरों के सर कलम कर जलूस निकाला गया था और बंदा बहादुर को अमानवीय यातनाएं देकर उसके बच्चे को उसके मुख में डाला गया था। जहां बंदा सिंह बहादुर को लोहे की गरम-गरम सलाखों से नोचकर, यातनाएं देकर मारा गया उसी स्थान पर श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी व बंदा सिंह बहादुर की आगामी पीढ़ियों ने खालसा पंथ का झंडा लहरा दिया।

बंदा सिंह बहादुर ने अपनी महान कुर्बानी से पूर्व भारतवासियों को 700 साल बाद स्वतंत्रता का पहला पाठ पढ़ाया था। वहीं सरदार बघेल सिंह जैसे अद्वितीय जरनैल महान योद्धा ने खालसा पंथ के रूप में भारत की आजादीका दोबारा झंडा गाड दिया।

खालसा राज की स्थापना

मुगल बादशाह शाहआलम ने हार को स्वीकार किया। तीन लाख रुपये नजराना के रूप में पेश किए। राज्य अभिषेक के लिए एक रस्म अदा की गई। दीवाने खास में 12 मार्च 1787 को बघेल सिंह ने आदर सत्कार देते हुए जस्सा सिंह आहलुवालिया को शहनशाह की कुर्सी पर सुशोभित किया। सरदार जस्सा सिंह आहलुवालिया को सुलतान उल कौम का ताज पहनाया गया। परन्तु आहलुवालिया के विरोधियों को विशेषकर जस्सा सिंह रामगढ़िया को यह बात ना सहन हुई। उसने आहलुवालिया को सुलतान बनाने का विरोध किया। यह विवाद सुनते ही जस्सा सिंह आहलुवालिया ने शाही सिंहासन खाली कर दिया। इस प्रकार सिखों में फैली आपसी फूट का संकट टल गया।

गुरुधामों का जीर्नोद्धार

सरदार बघेल सिंह ने पहला काम, सिख इतिहास से जुड़े गुरुघरों की उसारी, को अपने हाथ ले लिया। सभी स्थानों पर गुरुद्वारे बनाए। इस निमाने सिदकी (नम्रता का प्रतीक) गुरु सिख ने सर्व प्रथम गुरुद्वारा शीशगंज, बंगला साहिब, मजनू का टीला, मोती बाग तथा रकाब गंज की इमारते बनवाई। मुगल बादशाह से संधी हुई। उसके अनुसार 4000 गुर सिख फौज गुरुद्वारों की रक्षा हेतु सदा के लिए तैनात रहेंगे। उस फौज का संपूर्ण खर्च मुगल राज से देना तय हुआ। मुगल बादशाह से गुरुद्वारों की उसारी और देखभाल की गारंटी लेकर बघेल सिंह ने केवल 4000 फौज दिल्ली में रखी-शेष सम्पूर्ण। 30 हजार फौज के शीघ्र पंजाब पहुंचने के हुकम जारी कर दिए। पाठक गण इससे बड़ा श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी का लाडला गुरमुख शूरवीर योद्धा और कौन होगा। जिसने अनेक वर्षों की जुझारु मेहनत के बाद दुशमनों की छाती चीर जीता हुआ लाल किला केवल गुरधामों की रक्षा और संभाल हेतु छोड़ दिये।

उस समय सिख बड़ी ताकत बन चुके थे। यहीं से महाराजा रणजीत सिंह के आगामी सिख राज की आरंभता हुई। 1780 में इस शेरे पंजाब ने जन्म लिया था। जिसने अपनी शौर्य और बुद्धिमतत्ता सब मिसलों की बिखरी शक्ति को एकत्र किया ओर सुदूर उत्तर पश्चिम में काबुल कंधार तक खालसा राज के झंडे लहरा दिये। 800 वर्षों से होने वाले विदेशी आक्रमणकारियों के भारत प्रवेश के सारे दरवाजे सदा के लिए बंद कर दिये। सरदार बघेल सिह जी जैसे धार्मिक भारत माता के सपूत हजारों वर्षों में प्राप्त होते हैं। जरा विचार करें-सैंकड़ों सालों से जमी हुई इस्लामी हुकूमत के बड़े-बड़े जगत विख्यात जरनैलों के इस शूरवीर ने घुटने टिकवा दिये।

कुछ समय के लिए ही क्यों ना हो स. बघेल सिंह ने संसार भर में धाक जमाने वाली दिल्ली की हुकूमत की नाक नीची कर दी। पंजाब से सिखों को दुश्मनों से चुनौती मिल रही थी। इसलिए लंबे समय तक सिख जीती हुई दिल्ली पर अपना वर्चस्व कायम नहीं रख सके। 1802 में सरदार बघेल सिंह की मृत्यु हो गई। होशियारपुर के हरियाणा गांव में इस इतिहास पुरुष की यादगार आज भी बनी हुई। स्वतंत्रता की चिंगारियां छोड़ रही है।

धन्य वे सूरज, धन्य चन्द्रमा, धन्य वे नक्षत्र, धन्य गृह, धन्य है व माता पिता जिन्होंने बघेल सिंह जैसे सपूत को जन्म दिया।

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ। सिरु धरि तली गली मेरी आउ।।
इतु मारगि पैरु धरीजै।। सिरु दीजै काणि न कीजै।।●

18वीं सदी का महानायक बंदा सिंह बहादुर - गुरचरन सिंह गिल

विश्व के यौद्धाओं का जब कभी समग्र इतिहास लिखा जाएगा तो बंदा सिंह बहादुर का नाम सबसे ऊपर की पंक्तियों में आयेगा। प्रथम इसलिए कि समस्त संसारिक आकर्षणों से मुक्त होकर वैरागी का जीवन जी रहें व्यक्ति द्वारा श्री गुरुगोंविद सिंह जी महाराज के मुख से पंजाब में हो रहे जुर्म व अत्याचार के घटनाक्रम को सुनकर दुष्टों को दण्ड देने के लिए शस्त्र धारण करना। दूसरा इसलिए कि वर्षों से शस्त्र विद्या का अभ्यास छोड़े जाने के बावजूद इतने सशक्त तरीके से युद्ध करना कि बड़े-बड़े अनुभवी मुगल सरदार व पठान उनके सामने टिक नही पाए। यहां तक कि एक लाख की विशाल सेना वाला जालंधर का नवाब बिना युद्ध किए ही इनके सामने समर्पण कर गया। तीसरा इसलिए भी कि बंदा सिंह बहादुर ने लगभग एक वर्ष के कार्यकाल में हरियाणा, पंजाब व उत्तरप्रदेश का काफी भू-भाग न केवल विजयी किया बल्कि उनकी सामरिक शक्ति को इस तरह तहस-नहस किया कि उनमें दोबारा सर उठाने की हिम्मत ही नही हुई एवं बहादुर शाह को राजस्थान से वापिस आना पड़ा तथा बंदा बहादुर की छोटी सी सेना से युद्ध करने के लिए दिल्ली दरबार को बीच में आना पड़ा। चौथा इसलिए भी कि जहां उन्होंने जहां दुष्ट व जालिम लोगों को सख्त से सख्त सजा दी वहीं अच्छे लोगों को भी कोई नुकसान नही पहुंचाया। पांचवा इसलिए कि उनकी लड़ाई सीधी मुसलमानों से होने के बावजूद भी उन्होंने मुस्लिम धर्म के किसी भी धार्मिक स्थल का अपमान या नुकसान नही किया। ये सारे तथ्य उनकों यौद्धाओं के सिरमौर के रूप में रखने के लिए पर्याप्त हैं क्योंकि इतने सारे गुणों व विशिष्टताओं वाला कोई यौद्धा न केवल तात्कालिक विश्व इतिहास बल्कि आगे पीछे भी नजर नही आता।

बंदा बहादुर को इतिहास में इसलिए भी याद किया जायेगा कि विश्व में सबसे पहले भूमि सुधार कानून उन्होंने ही लागू किए तथा खेत जोतने वाले को को उसका मालिक बनाया। विश्व के आज कई विकसित देशों में भी धरती मां को जोतने या उस पर खेती करने वाले मजदूरों को उन जमीनों पर मालिकाना हक नहीं मिले हैं।

बंदा सिंह बहादुर के प्रांरभिक जीवन उनके द्वारा गर्भवती हिरणी का शिकार व उस कारण से उपजे वैराग्य तथा गोदावरी के तट पर हुई उनकी श्री गुरु गोविंद सिंह जी महाराज से भेंट तथा उसके पूर्व तथा बाद के घटनाक्रम के बारे में संगत संसार में लिखा जा चुका है इसलिए उस संबंध में ज्यादा चर्चा न करते हुए सीधे उनके यौद्धा स्वरूप के बारे में इस लेख में चर्चा करेंगे।

वैरागी का सात्विक जीवन जी रहे माधोदास के आश्रम में जगह-जगह खून बिखरा देख माधोदास का क्रोध सातवें आसमान पर होना ही था लेकिन उसके करामाती पलंग पर निश्चल भाव से बिराजे श्री गुरुगोविंद सिंह जी महाराज ने जब पूछा कि माधोदास किस बात से क्रोधित हो, तो उसने कहा कि मेरे आश्रम में खून बहाकर उसे अपवित्र कर दिया गया है व मेरा धर्म नष्ट कर दिया गया है तो श्री गुरु गोबिंद सिंह जी महाराज ने कहा कि इस भारत की भूमि पर रोजाना हजारों निर्दोषों का खून बहाया जा रहा है व अबलाओं की ईज्जत लूटी जा रही है तथा छोटे-छोटे बच्चों को दीवारों में चिनवाया जा रहा है। यह सुनकर तुम्हें क्रोध क्यों नही आता। क्या उससे तुम्हारा धर्म भ्रष्ट नही हुआ। छोटी आयु में ही अबोध हिरणी की हत्या के कारण शस्त्र छोड़ने वाले वैरागी ने जब अबोध बच्चों को दीवारों में चिनने की बात सुनी तो सहज ही उसके हाथ शस्त्र पर चले गए। जन्मजात यौद्धा की यही निशानी होती है कि वह अन्याय और जुल्म को देखकर शांत नही रह सकता।

श्री गुरु गोबिंद सिंह जी महाराज ने माधोदास को अमृत छका कर सिंह सजाया और उसका नाम बंदा सिंह बहादुर रखा। उसे पंजाब की परिस्थितियों तथा श्री हरगोबिंद साहिब जी के द्वारा किए गए धर्मयुद्धों व उनके स्वयं द्वारा किए गए युद्ध-भंगाणी, नादेड़, आनंदपुर, चमकौर, मुक्तसर आदि तथा चारों साहिबजादों की शहादत एवं हिंन्दुओं व सिखों के साथ मुगल राज व उसके पिठ्ठुओं द्वारा किए गए जुल्मों से अवगत कराया। उसको खालसा पंथ का जत्थेदार बनाकर पांच तीर निशान साहिब तथा नगाड़ा दिया व पांच सिख बाबा विनोद सिंह, बाबा कान सिंह, बाबा दयासिंह, भाई रणसिंह और वीर सिंह दिये तथा गुरसिखों के लिए हुक्मनामें लिखें। जैसे-जैसे लोगों को पता लगता गया कि बंदा सिंह बहादुर को खालसा पंथ का जत्थेदार बनाकर पंजाब भेजा जा रहा है वैसे-वैसे ही लोग हुक्मनामों को सुनकर बंदा सिंह बहादुर के साथ आकर मिलते गए व धीरे-धीरे एक मरजीवड़ो की फौज तैयार हो गई।

समाणा की विजय

बाबा बंदा सिंह बहादुर छोटे-मोटे विरोधों को समाप्त करते हुए 26 नवंबर 1709 को समाणा पहुंचे। समाणा के सैयद गुरू घर के विरूद्ध हुए अत्याचारों में अग्रणी रहे। दिल्ली में श्री गुरु तेगबहादुर जी का शीश काटने पहुंचे जल्लाद जलालुद्दीन सैयद इसी समाणा के थे। यहां के सैयदों ने ही छोटे साहिबजादों को जिंदा दीवारों में चिने जाने का फतवा दिया था तथा यहीं के जल्लादों ने छोटे साहिबजादों के शीश काटे थे। इन कारणों से सिखों में समाणे के प्रति भारी रोष था। सामरिक दृष्टि से समाणा काफी निर्बल था तथा उनकी सेना में सैयदों के अलावा मुगल व पठान भी थे। समाणा के गलियों व बाजारों में तीन दिन तक लगातार संघर्ष होता रहा। नालियों में खून बहने लगा, जगह-जगह लाशें बिखर गई और अंततोगत्वा सारे अत्याचारी लोग मौत को प्राप्त हुए। यहां पर बंदा सिंह बहादुर ने अपनी विजय का झण्डा फहराया और वहां की व्यवस्थाओं को ठीक करने के लिए, अच्छे शस्त्र संजोने के लिए व सेना की रसद व्यवस्था के लिए आठ दिवस का समय लगाया।

सढौरा की विजय

समाणें में ही बंदा सिंह बहादुर को यह पता लगा कि संढोरा मे गुरू घर के सेवक सैयद बुद्धशाह बदरदीन को वहां के हाकिम उस्मान खां के द्वारा बहुत ही कष्ट देकर उसकी हत्या कर दी है क्योंकि उसने भंगाणी के युद्ध में श्री गुरु गोबिंद सिंह जी महाराज के साथ होकर अपने 700 मुरीदों सहित युद्ध में(शेष पृष्ठ 13 पर)

वार भाई बलवंड जी एवं भाई सत्ता जी

(श्री गुरुग्रंथ साहिब जी अंग 966 से 968)

रामकली की वार राइ बलवंडि तथा सतै डूमि आखी

ੴ सतिगुर प्रसादि।।

नाउ करता कादरु करे किउ बोलु होवै जोखीवदै।।
दे गुना सति भैण भराव है पारंगति दानु पड़ीवदै।।
नानकि राजु चलाइआ सचु कोटु सताणी नीव दै।।
लहणे धरिओनु छतु सिरि करि सिफती अम्रितु पीवदै।।
मति गुर आतम देव दी खड़्गि जोरि पराकुइ जीअ दै।।
गुरि चेले रहरासि कीई नानकि सलामति थीवदै।।
सहि टिका दितोसु जीवदै ।।१।।
लहणे दी फेराईऐ नानका दोही खटीऐ।।
जोति ओहा जुगति साइ सहि काइआ फेरि पलटीऐ।।
झुलै सु छतु निरंजनी मलि तखतु बैठा गुर हटीऐ।।
करहि जि गुर फुरमाइआ सिल जोगु अलूणी चटीऐ।।
लंगरु चलै गुर सबदि हरि तोटि न आवी खटीऐ।।
खरचे दिति खसम दी आप खहदी खैरि दबटीऐ।।
होवै सिफति खसम दी नूरु अरसहु कुरसहु झटीऐ।।
तुधु डिठे सचे पातिसाह मलु जनम जनम दी कटीऐ।।
सचु जि गुरि फुरमाइआ किउ एदू बोलहु हटीऐ।।
पुत्री कउलु न पालिओ करि पीरहु कंन्ह मुरटीऐ।।
दिलि खोटै आकी फिरन्हि बंन्हि भारु उचाइन्हि छटीऐ।।
जिनि आखी सोई करे जिनि कीती तिनै थटीऐ।।
कउणु हारे किनि उवटीऐ ।।२।।
जिनि कीती सो मंनणा को सालु जिवाहे साली।।
धरम राइ है देवता लै गला करे दलाली।।
सतिगुरु आखै सचा करे सा बात होवै दरहाली।।
गुर अंगद दी दोही फिरी सचु करतै बंधि बहाली।।
नानकु काइआ पलटु करि मलि तखतु बैठा सै डाली।।
दरु सेवे उमति खघे मसकलै होइ जंगाली।।
दरि दरवेसु खसम दै नाइ सचौ बाणी लाली।।

बलवंड खीवी नेक जन जिसु बहुती छाउ पत्राली।।
लंगरि दउलति वंडीऐ रसु अम्रितु खीरि घिआली ।।
गुरसिखा के मुख उजले मनमुख थीए पराली।।
पए कबूलु खसम नालि जां घाल मरदी घाली ।।
माता खीवी सहु सोइ जिनि गोइ उठाली ।।३।।
होरिंओ गंग वहाईऐ दुनिआई आखै कि किओनु।।
नानक ईसरि जगनाथि उचहदी वैणु विरिकिओनु ।।
माधाणा परबतु करि नेत्रि बासकु सबदि रिड़किओनु ।।
चउदह रतन निकालिअनु करि आवा गउणु चिलकिओनु ।।
कुदरति अहि वेखालीअनु जिणि ऐवड पिड ठिणकिओनु ।।
लहणे धरिओनु छत्रु सिरि असमानि किआड़ा छिकिओनु ।।
जोति समाणी जोति माहि आपु आपै सेती मिकिओनु ।।
सिखां पुत्रां घोखि कै सभ उमति वेखहु जि किओनु ।।
जां सुधोसु तां लहणा टिकिओनु ।।४।।
फेरि वसाइआ फेरुआणि सतिगुरि खाडूरु ।।
जपु तपु संजमु नालि तुधु होरु मुचु गरूरु ।।
लबु विणाहे माणसा जिउ पाणी बूरु ।।
वर्हिऐ दरगह गुरू की कुदरती नूरु ।।
जितु सु हाथ न लभई तूं ओहु ठरूरु ।।
नउ निधि नामु निधानु है तुधु विचि भरपूरु।।
निंदा तेरी जो करे सो वंञै चूरु ।।
नेड़ै दिसै मात लोक तुधु सुझै दूरु ।।
फेरि वसाइआ फेरुआणि सतिगुरि खाडूरु ।।५।।
सो टिका सो बैहणा सोई दीबाणु।।
पियू दादे जेविहा पोता परवाणु।।
जिनि बासकु नेत्रै घतिआ करि नेही ताणु।।
जिनि समुंदु विरोलिआ करि मेरु मधाणु ।।
चउदह रतन निकालिअनु कीतोनु चानाणु ।।
घोड़ा कीतो सहज दा जतु कीओ पलाणु ।।
धणखु चड़ाइओ सत दा जस हंदा बाणु ।।
कलि विचि धू अंधारु सा चड़िआ रै भाणु ।।

सतहु खेतु जमाइओ सतहु छावाणु ।।
नित रसोई तेरीऐ घिउ मैदा खाणु ।।
चारे कुंडां सुझीओसु मन महि सबदु परवाणु ।।
आवा गउणु निवारिओ करि नदरि नीसाणु ।।
अउतरिआ अउतारु लै सो पुरखु सुजाणु ।।
झखड़ि वाउ न डोलई परबतु मेराणु ।।
जाणै बिरथा जीअ की जाणी हू जाणु ।।
किआ सालाही सचे पातिसाह जां तू सुघड़ु सुजाणु ।।
दानु जि सतिगुर भावसी सो सते दाणु ।।
नानक हंदा छत्रु सिरि उमति हैराणु ।।
सो टिका सो बैहणा सोई दीबाणु ।।
पियू दादे जेविहा पोत्रा परवाणु ।।६।।
धंनु धंनु रामदास गुरु जिनि सिरिआ तिनै सवारिआ।।
पूरी होई करामाति आपि सिरजणहारै धारिआ।।
सिखी अतै संगती पारब्रहमु करि नमसकारिआ।।
अटलु अथाहु अतोलु तू तेरा अंतु न पारावारिआ।।
जिन्ही तूं सेविआ भाउ करि से तुधु पारि उतारिआ।।
लबु लोभु कामु क्रोधु मोहु मारि कढे तुधु सपरवारिआ।।
धंनु सु तेरा थानु है सचु तेरा पैसकारिआ।।
नानकु तू लहणा तूहै गुरु अमरु तू वीचारिआ।।
गुरु डिठा तां मनु साधारिआ ।।७।।
चारे जागे चहु जुगी पंचाइणु आपे होआ।।
आपीन्है आपु साजिओनु आपे ही थम्हि खलोआ।।
आपे पटी कलम आपि आपि लिखणहारा होआ।।
सभ उमति आवण जावणी आपे ही नवा निरोआ।।
तखति बैठा अरजन गुरू सतिगुर का खिवै चंदोआ।।
उगवणहु तै आथवणहु चहु चकी कीअनु लोआ ।।
जिन्ही गुरू न सेविओ मनमुखा पइआ मोआ।।
दूणी चउणी करामाति सचे का सचा ढोआ।।
चारे जागे चहु जुगी पंचाइणु आपे होआ ।।८।।१।।

Ibrahim Khan Gardi

- **Brahm Prakash**, New Delhi

Ibrahim Khan (died 1761) was a Dakhani Muslim general in the 18th century India. His forefathers were from a central Indian tribe He was an expert in artillery, he initially served the Nizam of Hyderabad, before working under the Peshwa of the Marathas. As a general of the Maratha Empire, he commanded a force of 10,000 men, infantry and artillery. He was captured and killed by the Abdalis during the 3rd War of Panipat in 1761. Vir Savarkar has praised him in his book- "Hindupad Patshahi".

Military Career of Ibrahim Khan- he was an ambitious soldier as well general, an expert in artillery arm of the army of the Hyderabad's Nizam, He was loyal to Nizam Ali and fought the war against Marathas in the battle of Udgir, in which Marathas won.

Ibrahim Khan was deputed to Maratha Army as a result of treaty between the two side after the war and he soon joined the services of the Peshwa to command a Battalion having strength of 10,000 men consisting of cavalry, infantry, artillery, archers and bayonet wielding musketeers compared to the total strength of Nizam's entire army was no more than 2,000 men. This was windfall for Ibrahim Khan and he was the first person to reach the highest level of becoming deputy commander-in-chief as well as artillery in charge of one of the most powerful armies in the world at that time.

He was a close to the Peshwa and cousin Sadashivrao Bhau, the commander-in-chief of the Maratha army during the Panipat military expedition.

Other generals were jealous of Ibrahim Khan for his proximity to the Peshwa and they were not happy that the Peshwa's cousin Sadashivrao Bhau was consulting Ibrahim Khan more then them, while planning the strategy during the expedition. Latter over enthusiasm of some general compounded with indiscipline caused Martha's heavy loses. Sadashivrao Bhau along with Ibrahim Khan had planned and were executing a foolproof battle strategy to pulverize the enemy formations with cannon fire and not to employ his cavalry until the Afghans were thoroughly softened up. With the Afghans now broken, he'd move camp in a defensive formation towards Delhi, where they were assured supplies but jealous of the exploits of their artillery chief,[the envious Maratha generals overacted while some left battlefield leaving their defenses open resulting in the defeat of the Marathas. Abdali had given a part of his army the task of surrounding and killing the under Ibrahim Khan , who were at the leftmost part of the Maratha army. Bhau had ordered Vitthal Vinchurkar (with 1500 cavalry) and Damaji Gaikwad (with 2500 cavalry) to protect the formation, however, after seeing the fight, they lost their patience, became overenthusiastic and decided to fight the Rohillas themselves. Thus they broke the round. This was because they were not experienced in fighting in such formations and this was regarded as an instance of inexperience of the Maratha army in engaging in pitched battles. Hence, they didn't follow the idea of round battle and went all out on the Rohillas, and the Rohilla riflemen started accurately firing at the Maratha cavalry, which was equipped only with swords. This gave the Rohillas the opportunity to encircle the and outflank the Maratha centre while Shah Wali pressed on attacking the front. Thus they were left defenseless and started falling one by one. This incident is also regarded as an instance where the Maratha army could not harmonise their light cavalry with their artillery supported infantry.

It was Ibrahim Khan battalion which faced & repulsed the Afghan onslaught during the battle. All of the Afghan attacks failed to dislodge Ibrahim Khan battalion from its defensive positions. About 12,000 Afghan cavalry and infantrymen lost their lives in this opening stage of the battle. Around 45,000 men from the Durrani army of Ahmad Shah Durrani lost their lives due to salvos fired at point blank range into the Afghan ranks.

Even when the news of the death of Vishwasrao, the Peshwa's son, reached Ibrahim Khan battalion it kept defending its position against a numerically stronger Afghan army as, one by one, musketeers fell and the remaining members escaped from the battlefield using the darkness as cover on the night of 14 Jan. 1761.

Ibrahim Khan was caught by Afghans while

performing last rites of his master Sadashivrao Bhau and Vishwasrao. Ibrahim Khan was tortured to death by Najib-ud-daula and his Rohilla men[as revenge for serving the Marathas as well as for his insulting Ahamd Shah Abdali, when latter snubed him for siding with Maratha. Another noteworthy act of Ibrahim Khan which they might not have like could be Ibrahim Khan's executing the local Muslim leader, who was sent in as an agent of Afghan to him and tried to incite him to change the side on the religious ground.

Ibrahim Khan loyalty to his master as well as courage to stand upfront against invadere distinguishes him from others and makes him memorable in folklore and songs in the Deccan region.

Trained to the French discipline as commandant de la qarde to Bussy, Ibrahim bore the title, or nickname, of "Khan," a souvenir of his professional origin or title. Originally part of the Hyderabad Nizam's army, consisting of a number of Telegus. His troops' military prowess and artillery tactics were considered a great advantage in various campaigns. Captured in the Third Battle of Panipat, he is alleged to have been tortured horribly before his death by his Afghan captors. His extreme sense of loyalty to his master Sadashivrao Bhau even when some of the Maratha generals deserted Sadashivrao Bhau's army during the thick of battle and escaped unhurt to their Jahagirs in Deccan, Ibrahim Khan fought to his end and was captured only when all his famed Maratha (Telgi or telugu from present day Andhra) musketeers laid down their lives, one by one, or simply vanished during the night of 14 January 1761 when darkness fell on the battlefield. Some of Ibrahim Khan artillery detachment with infantry and musketeers kept on fighting while defending their positions until sunset to escape in the darkness of night. To this date, some of the Pardhi communities' folklore have various songs in praise of Ibrahim Khan as well as Suleiman Khan Gardhi.

Khans kept on serving Peshwas as personal guards as well as musketeers until the end of the Peshwa rule in 1818. After end of the Peshwa's rule, his private army was disbanded and some along with others from the Maratha sections joined services of the East India Company as sepoys, musketeers, cavalrymen in infantry and artillery units especially in The Poona Horse in 1818, Bombay Sappers, Madras Sappers, and Maratha Light Infantry.●

(पृष्ठ 8 का शेष)

भाग लिया था तथा उसके दो पुत्र उसमें शहीद हो गए थे। इसलिए बंदा सिंह बहादुर जो कि ऐसे दुष्टों को ही दण्ड देने पंजाब आया था, उसने संढोरा की ओर मुंह किया। संढोरा के रास्ते में छोटे-बड़े अवरोध घुणाम, ठसका, शाहबाद, कुंजपुरा, मुस्ताबाद व कपूरी पड़ते थे। यहां के हाकिमों के बारे में भी यह शिकायत थी कि ये लोग हिंदुओं के साथ बहुत जबर जुल्म करते हैं, इसलिए उन्हें सबक सिखाना भी जरूरी था इस कारण वहां आक्रमण किया गया। कपूरी के नबाव कदमदीन के बारे में तो यह शिकायत थी कि वे बहुत ही बिलासी व बदमाश किस्म का आदमी थी। वह हिन्दुओं स्त्रियों को डोलियों में से निकालकर उनका सतित्व भंग करने में आनंददित महसूस करता था तथा हिन्दुओं के साथ और भी कई प्रकार से ज्यादती करता था। इस कारण कपूरी के नबाव को सबक सिखाना जरूरी था और वैसा किया भी। संढोरे के बारे में यह भी शिकायत मिली कि संढोरे के नबाव व मुसलमान हिन्दुओं को उनके मुर्दों का संस्कार व अन्य धार्मिक रस्में करने की ईजाजत नही देते थे तथा हिन्दुओं के घरों के सामने गाय की हत्या कर, उसका खून व आंते हिन्दुओं के घरों के आगे डाल देते थे। ऐसे आतंककारी व्यवहार के कारण ज्यादातर हिन्दु शहर छोड़कर जा रहे थे और यह सब वहां के हाकिम उस्मान खां की शह और देखरेख पर हो रहा था। संढोरा पर जब आक्रमण का पता लगा तो आसपास के लोग जो कि उस्मान खां और मुसलमानों के जुल्म से तंग आ गए थे, वे भी युद्ध में साथ आ मिले। काफी संघर्ष के बाद अंततोगत्वा खालसे को जीत प्राप्त हुई और उन्होंने किले पर कब्जा कर लिया। उस्मान खां व उसके साथियों को पकड़कर उन्हें सैयद बुद्धु शाह की हत्या के आरोप में फांसी पर लटकाया गया। यहां के हर जालिम आदमी को कत्ल किया गया व उनके घर जलाये गए लेकिन बुद्धु शाह की हवेली को कोई नुकसान नही पहुंचाया गया। यह सोचकर 40-50 मुगल सरदार व सैयद उस हवेली में जा छिपे। जोश और गुस्से में भरे लोगों ने उन सबका हवेली में ही कत्ल कर दिया और उस हवेली का नाम कत्लगढी हो गया। सढौरा में जहां जालिमों को इस सीमा तक सबक सिखाया कि उनके रहने-जीने का कोई ठिकाना ही न रहा, वहीं वहां पर स्थित पीरो-फकीरों की जगहों को कोई नुकसान नहीं पहुंचाया। शाह अब्दुल हमीद 'गंजे इल्म' और शाह अब्दुल बहाव 'कुतबुल अख्ताव' की खानगाहों को कोई नुकसान नही पहुंचाया और वह आज तक मौजूद हैं। संढोरा के बगल में ही मुकलिसगढ़ का किला लगता था जिसकों भी खालसा फौजों ने विजयी कर लिया। यह किला सैनिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण था क्योंकि यह पहाड़ी पर स्थित था।●

शेर जरनैल सरदार हरि सिंह नलवा - महिन्दर सिंह बाली

महाराजा रणजीत सिंह जिन पराक्रमी शूरवीरों पर गर्व करते थे। उनमें सरदार हरि सिंह नलवा एक अद्वितीय जरनल थे। यह चमत्कार नलवा सरदार का ही था कि पुराने पंजाब की सीमाएं जो मुस्लिम आक्रान्ताओं ने 800 वर्ष पूर्व (अनंगपाल के समय छीनी थी) और बाद में भी वापिस नहीं आई थी। उनको खालसा राज्य के केन्द्र लाहौर दरबार के साथ पुनः जोड़ दिया। और जिन खैबर जैसे दर्रों से विदेशी ताकतें सदा ही घुसकर भारत की संस्कृति सभ्यता को मलिया मेट करती थी। उनके **दरवाजे महाराजा के कुशल नेतृत्व में नलवा सरदार ने सदा के लिये बंद कर दिये**।

इस महान जनरैल का जन्म सन् 1791 ईस्वीं में सरदार गुरदियाल सिंह जी के घर गुजरांवाला (पाकिस्तान) में हुआ। छोटी 7 वर्ष की आयु में पिता का साया सिर से उठने के बाद उसकी परवरिश उनके मामा ने की। आप की औपचारिक शिक्षा या सैनिक शिक्षा का कोई प्रबंध संभव ना हो सका। उनकी ईश्वरीय बुद्धि ऐसी तीक्षण थी कि जो देख या सुनले वह विषय उनके हृदय में बस जाता था। 15 वर्ष की आयु में ही बिना किसी शिक्षक के दूसरों को देख कर ही सारे जंगी हुनर प्राप्त कर लिये। इसके अलावा फारसी और पंजाबी लिखने पढ़ने की भी अच्छी योग्यता हासिल कर ली।

सरदार हरि सिंह का नाम 'नलवा' सरदार क्यूं पड़ा इसके लिये विद्वानों ने काफी कुछ लिखा है। बाबा प्रेम सिंह होती मरदान लिखते हैं -''प्राचीन काल में राजा नल अपने समय का महान दानी और अद्वितीय शूरवीर था। वह शेर से लड़कर उसको मारने में प्रसिद्ध था। हरि सिंह में वह सब गुण विद्यमान थे। इसलिए नल शब्द से ही नलवा नाम पड़ गया।

मौलाना अहमददीन अपनी पुस्तक 'मुकमल तारीख कश्मीर में प्राचीन राजा नल से इस नाम की पुष्टि करते हैं। श्रीमान एन.के. सिन्हा भी लिखते हैं कि राजा नल के समान हरि सिंह ने शेर की गर्दन को अपने हाथों से मरोड़ कर मार गिराया।

उन दिनों महाराजा रणजीत सिह **बसंती दरबार** साल में एक बार लगाते थे। 1805 के बसंती दरबार में पहली बार हरि सिंह ने अपने सैनिक कर्तब दिखाए। इस योग्यता को देखकर रणजीत सिंह ने हरि सिंह को अपनी फौज में भरती कर लिया। कुछ दिनों बाद ही नलवा की एक शेर से लड़ाई देखकर महाराजा ने उसको अपनी 'शेर दिल नामी रैजीमेंट में सरदारी प्रदान कर दी। 1807 में **कसूर की विजय में** इनाम हासिल करके हरि सिंह ने विशाल जागीर हासिल कर ली।

1810 की मुलतान की लड़ाई में वहां का नवाब मुज्जफर खान डट गया। उसने खालसा फौज को रोक दिया। रणजीत सिंह ने मुलतान के किले की दीवार को बारूद से उड़ाने के लिये कुछ मरजीवड़े बहादुरों की मांग की। सरदार हरि सिंह ने इस **जोखिम भरे काम** के लिये **अपने को सबसे पहले पेश किया** और किले की दीवार को नेस्तनाबूद कर दिया। घायल होने के बाद भी हरि सिंह ने हिम्मत नहीं हारी। 1818 ईस्वी में मुलतान की अन्तिम निर्णायक विजय और काश्मीर को जीतने में बहुत बड़े कारनामें किए। हरि सिंह को कश्मीर का गवर्नर बनाया गया। आपने **अद्वितीय शूर वीरता दिखाकर कश्मीर को खालसा राज मे मिलकर पंजाब का एक लाभकारी सूबा बना** दिया। महाराजा ने इस कौतक को देखकर हरि सिंह को कश्मीर में अपना सिक्का चलाने का अधिकार दिया। परन्तु एक अनुशाषित जरनैल का उदाहरण पेश करते हुए सरदार नलवा ने कश्मीर में 'गुरु नानक' खालसे जी सहाय, लाहौर राज्य के नाम के सिक्के चलाए।

एक बार कश्मीर से मुजफराबाद आते हुए 'मांगली' के दर्रा हजारा के भारी लश्कर ने उनका रास्ता रोक लिया। वर्षा के कारण वहां के लोग अपनी छतों की मिट्टी कूट रहे थे। हरि सिंह ने समझ लिया अच्छी कुटाई और पिटाई के बिना यह लोग रास्ता नहीं देंगे। सरदार नलवा ने अपनी सात हजार की सेना के साथ तीस हजार की फौज का सामना करके विजय प्राप्त कर ली। नौशहरा और जहांगीर की बड़ी लड़ाईयों में भी सफलता प्राप्त की। इस बारे में **अलगजैंडर बरनज** एवं **मौलवी साहनत अली लिखते** हैं कि ''खालसा की इन सफलताओं और ऐसे कारनामों को देखकर विश्व की बड़ी से बड़ी शक्तियां चिंता में पड़ गई।

1834 में महाराजा रणजीत सिंह ने फैसला किया और मंत्रणा की कि जब तक पेशावर और सरहदी सूबा खालसा राज में नहीं मिल जाते तब तक पंजाब एवं शेष भारत को विदेशी हमलों से छुटकारा नहीं मिलेगा। अर्थात् **सूबा पेशावर को अफगानिस्तान से काट कर पंजाब राज्य में मिला** लिया जावे। इसके लिये महाराजा ने 27 अप्रैल 1834 में सरदार हरि सिंह नलवा और कंवर नौनिहाल सिंह को पेशावर पर चढ़ाई का आदेश दिया। सरदार हरि सिंह नलवा ने बड़ी योग्यता से दरिया अटक (सिंधु नदी) को बेड़ियों का पुल बना कर खालसा फौज दरिया पार करवाई। दूसरी ओर पेशावर के हाकमों ने भी तुरन्त खालसा फौज को रोकने के लिये '**चमकनी**' की सीमा पर मोरचे बनाकर तोपें को पीड़ दीं, और पेशावर का रास्ता अपने कब्जे में कर लिया। जब खालसा फौज मोरचों पर पहुंचने वाली थी। दुश्मनों ने धुंआधार गोलाबारी शुरू कर दी। इस समय राम सिंह हसन-वालिआ हाजी खान से दलेरी से लड़ता हुआ जख्मी हो गया। अफगान बहादुरी से लड़े। परन्तु खालसे फौज के तूफान के सामने टिक न सके। परिणाम स्वरूप मई 1834 **दोपहर तक विजय का बिगुल बज** गया और पेशावर पर खालसा फौज का अधिकार हो गया। **सात सदियों से पंजाब से टूटा हुआ अंग पुनः विशाल भारत से जुड़ गया।** खालसे का झंडा बुलंद हो गया। इतिहास लिखता है कि इस ऐतिहासिक जीत की खुशी में पेशावर के हिन्दुओं और मुसलमानों ने दीप माला की। क्योंकि लंबे समय के बाद पेशावर की जनता ने बारक-जुईओं के हाथों से छुटकारा पाया था।

पेशावर फतेह के बाद सरदार हरि सिंह नलवा ने पहला काम यह किया कि औरंगजेब के समय से हिन्दुओं और सिखों पर लगाया हुआ जजिया कर (टैक्स) जोकि (एक दीनार) 'चार मासे सोना'

बनता था उसे पूरी तरह हटा लिया। पेशावार में हरि सिंह के राज प्रबंधक और न्याय को देखकर महाराजा ने नलवा सरदार को अपना सिक्का चलाने का पुन: अधिकार दिया। यह सम्मान हरि सिंह को दूसरी बार प्राप्त हुआ।

कुछ समय बाद सरदार हरि सिंह ने पेशावर से काुबल के रास्ते में दर्रा खैबर की पहाड़ियों के पास **जमरोद नाम की धरती पर एक मजबूत जंगी किला बनाया। जिसका नाम जमरोद का 'फतेहगढ़ किला रखा'**। इस किले की उसारी से अफगानिस्तान की हुकूमत का तख्ता हिल गया। काबुल में बड़ी घबराहट शुरु हो गई। इधर खालसा फौज का अगला निशाना काबुल को फतेह करना तय हुआ। उधर अफगानों ने जिंदगी और मौत का सवाल बनाकर जैहाद का नारा दे दिया। संघर्ष का बिगुल दोंनों और से बज गया। सरदार हरिसिंह नलवा के नेतृत्व में खालसा फौज ने काबुल के आस-पास संपूर्ण सिंह (सीमावर्ती) इलाके पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। पेशावर को 800 वर्ष बाद महाराजा रणजीत सिंह के राज्य में सम्मलित कर लिया गया। जमरोद का फतेहगढ़ किला खालसा फौज का शक्ति केन्द्र बन गया। हरि सिंह नलवा के नाम की दहश्त अफगानों के घरों तक गूंजने लगी। वहां आम जनता को डर पैदा हा गया कि नलवा सरदार आज आया या कल आया। काबुल की माताओं में भय और आतंक छा गया। वह अपने बच्चों को नलवे के नाम के इन शब्दों से डराने लगी। ''चुप शा बच्चा, हरिआ रागले''। चुपकर सो जा नहीं तो हरिसिंह आ जाएगा।

उधर सरहदों पर जंगी तैयारियां मुकमल थी। खालसा फौज अफगानिस्तान की प्रभुसत्ता (Sovernigty) को चुनौती दे रही थी। जमरोद खैबर के द्वार पर खड़ा फतेहगढ़ किला अफगानिस्तानियों की नींद हराम कर रहा था। इस घबराहट के वातावरण में अफगानों की हुकूमत जरनैल महमूद अकबर के नेतृत्व में 30 हजार सैना 40 तोपे और 2000 और सैनिक हाजी खान काकड़ सैयद बाबा जान की अगुवाई में किला शंकरगढ़ और मिचनी पर चढ़ाई के लिये चल पड़ी। हाजी खान की अतिरिक्त 2000 सेना और 6 तोपे भी अफगान सेना की सहायता के लिए पहुंच गई।

दूसरी ओर इन्हीं दिनों सरदार हरि सिंह नलवा सख्त बीमार हो गए वह पेशावर शहर में आराम कर रहे थे। पेशावर की खालसाई फौज का बहुत बड़ा हिस्सा कंवर नौनिहाल की शादी में लाहौर गया हुआ था। जमरोद किले के मुखी सरदार महासिंह मीरपुरी के पास केवल 800 पैदल, 200 घुड़सवार, 80 तोपखाने को गोलंदाज, 10 बड़ी तोपे और 12 छोटी पहाड़ी तोपें मौजूद थी।

अफगान फौज ने 21 अप्रैल 1837 की प्रात: किला जमरोद पर धावा बोल दिया। सरदार महासिंह ने डटकर मुकाबला किया।

छोटी सी खालसा फौज ने किले से हमले इतनी तेजी से किए कि संयुक्त अफगान सैना की एक ना चलने दी। सारा दिन अफगान फौज किला विजय करने के लिये बेताब रही। परन्तु अफगान की फौज भारी संख्या में होने के कारण सायंकाल को किले की दीवार के एक हिस्से को तोपों से हिलाकर उसमें दरार पैदा कर दी। परन्तु खालसा के डर से किले के अंदर कोई दाखिल ना हो सका। अफगानों ने यह सोचकर कि अब तो किले पर उन का कब्जा हो जाएगा। इसलिए रात्रि को विश्राम करने लगे और खाने पीने में व्यस्त हो गए।

इधर रात्रि होते ही सरदार महासिंह ने किले पर सब सरदारों को इकट्ठा कर लिया और जोश भरे शब्दों से सरदारों से दो मांगों की पेशकश की।

पहली मांग रखी कि किले की दीवार को रात ही रात रेत की बोरियों से भरकर उसकी दरार को मजबूत बनाया जावे। दूसरी मांग रखी कि रात्रि के समय प्रात:काल से पूर्व पेशावर जाकर सारे हालात सरदार हरि सिंह नलवा को बताने के लिए कोई भी नौजवान तैयार हो जाए। पहली मांग पर लगभग 100 नौजवानों ने रातो रात किले की दीवार में पड़ी दरार को भर दिया। वह वचन पर खरे उतरे। दूसरी मांग पर बीबी हरशरण कौर ने पेशावर जाने की हठ किया। यह संदेशवाहिका का काम उसे सौंपा गया।

सरदार महासिंह ने सरदार नलवा जी को जो पत्र भेजा। उसका एक-एक अक्षर ऐतिहासिक है। वह इस प्रकार है-

मानयोग जी, नलवा सरदार! मन नहीं मानता कि आपको बिमारी की हालत में अपने साथ मिलाया जावे। पर हम जो इस बात को जानते है कि पेशावर में सेना बहुत कम है और लाहौर से फौज नहीं पहुंच सकती। इसीलिए किले के खालसे की इच्छा है कि आप को वर्तमान समय में यहां के हालात बताए जावें। किले के बाहर की दीवार का एक हिस्सा दुश्मन ने तोपों से गिरा दिया था। परन्तु रात ही रात खालसे ने पुन: रेत की बोरियों से खड़ा कर दिया है। आज उस समय सतिगुर ने खालसे की पैज (सम्मान) रख लिया। जबकि दीवार के गिरते ही दुश्मन ने किले के अन्दर आने का साहस नहीं किया। वह विजय उनकी निश्चित समझकर आराम से रात को चला गया। नहीं तो यह अन्तिम संदेश आप जी की सेवा में नहीं भेजा जा सकता था। लग रहा है प्रात: होते ही पठान पूरी ताकत से हमला करेंगे और आप जी का प्यारा फतेहगढ़ किला जमरोद की धरती से मिला दिया जावेगा। परन्तु आप यह समाचार सुनकर अवश्य प्रसन्न होंगे कि आप ने जिन जवानों पर किले की सुरक्षा सौंपी थी। उनमें से एक भी ऐसा नहीं निकला जिसने पंथ की इज्जत पर अपनी जान कुर्बान ना की हो। इस समय किले में घायलों को छोड़कर 700 फौज अड़िग होकर खड़ी है। इन सबको श्री गुरुग्रंथ साहिब जी के सम्मुख प्रण लिया है कि जब तक 'हमारी रगों' में खून का एक तुबका बाकी है। खालसे के झंडे को कोई आंच नहीं आ सकती। इसके बाद शायद आपको कोई पत्र या संदेश नहीं पहुंच सकेगा। अत: किले के पंथ खालसा जी का अपनी और से फतेह भेज रहे हैं। वाहिगुरुजी का खालसा-वाहिगुरुजी की फतेह।

महासिंह और किला का सरबत खालसा

इस पत्र की प्राप्ति के बाद अभी कुछ रात्रि की बात थी। हरि सिंह के मन में देश भक्ति का जजबा ठांठे मारने लगा। वह बिमारी भूलकर तुरन्त बिस्तर से खड़े हो गए। पुन: पत्र को पढ़ा। उन्होंने अपने स्वास्थ्य और अपनी जान की परवाह ना करके देश की शान और खालसा की आन को महत्वपूर्ण समझा। तुरन्त जो सेना पेशावर

में थी उसे लेकर जमरोद की ओर चल पड़ा। चलने से पूर्व सरदार महासिंह का पत्र और अपना पत्र एक तेज रफतार सांढनी सवार के हाथ शेरे पंजाब महाराज रणजीत सिंह के पास लाहौर दरबार को भेज दिया और 6 हजार पैदल 18 तोपों और कुछ घुड़सवार लेकर सरदार हरिसिंह नलवा 30 अप्रैल की प्रात: पठानों के किले पर हमला करने से पहले ही उन पर जमरोद के मैदान-ए-जंग में टूट पड़ा। इस तूफानी हमले को पहले तो पठान जोश के साथ रोकते रहे। परन्तु उनको जैसे ही समाचार मिला कि सरदार नलवा स्वयं जंग में कूद पड़ा है तो उन्होंने लड़ाई ना कर इधर-उधर पहाड़ी कंदराओं में छिप जाना ही बेहतर समझा। अफगान सैना में ऐसी भगदड़ मची कि किसी को किसी से कुछ मतलब नहीं रहा वह मैदान छोड़कर खैबर दर्रा में जान बचाने के लिए बेचैन हो गए। सभी तीस हजार सैनिक गायब हो गए। हरि सिंह ने पठानों की 14 तोपें भी छीन ली। जिनमें प्रसिद्ध पहाड़ी तोप भी सम्मलित थी जिसे पहाड़ तौड कहा जाता था।

सरदार नलवे ने चाहा कि सारी सैना को किले में ले जाकर आराम कराया जावे। पर जत्थेदार निधान सिंह पंच हथी जी के जोश में शत्रू के कैंप में दर्रा खैबर की गुफाओं तक उनका पीछा करता हुआ गुफा के अंदर चला गया। जैसे ही हरिसिंह ने निधान सिंह को दुश्मन की ओर जाते देखा तो वह निधान सिंह को गुफा में जाने से रोकने के लिए पीछे गया। ऊपर लाल चट्टान के अंदर छिपे हुए अफगानों ने नजर रखी हुई थी। उन्होंने गुफा के अंदर आते ही हरि सिंह के अंगरक्षक अजैब सिंह को गोली मार दी, वह वहीं पर ढेर हो गया और लगातार गोलियां चलीं। दो गोलियां हरि सिंह को लगी। यह देखते ही हरिसिंह के साथी सवार वहां पहुंच गए उन्होंने चुन चुन कर अफगानों को समाप्त कर दिया। अफगान पठानों ने वापिस अफगानिस्तान भागना शुरु किया। परन्तु हरि सिंह को तो गोली लगी थीं वह होनी होकर रही।

सरदार हरि सिंह ने घायल होने के बावजूद घोड़े की लगाम पकड़ी और बड़े साहस के साथ अपने घोड़े को किले की तरफ दौड़ाया। सरदार महासिंह ने सावधानी के साथ हरि सिंह को घोड़े से उतारा। परन्तु नलवा सरदार के जख्मों में से खून के फव्वारे छूटते देखकर महासिंह के हाथों के तोते उड़ गए। परन्तु बहुत जल्दी जख्म साफ करवाकर पट्टी आदि से बंधवा दिया। सरदार हरि सिंह ने अपनी हालत देखी तो नाजुक स्थिति में पुराने कुछ साथियों को बुलाकर हदायत दी, कि काले पर्वतों में खालसाई झण्डे एवं इज्जत-आबरू को कायम रखने के लिये आखिर के स्वांसों तक उठाए रखना। ऐसी प्रेरणा दी। यह भी कहा कि मेरी मौत के समाचार को लाहौर दरबार से सहायता आने तक गुप्त रखना। सरदार महासिंह ने नलवा की इच्छानुसार भेद गुप्त रखने के लिए रातों रात किले की एक नुक्कड़ में सादे ढंग से कनाते लगाकर स. नलवा का संस्कार कर दिया। यह घटना 30 अप्रैल 1837 की है। जिस किले को सरदार नलवा ने भारत वर्ष की रक्षा और खालसे की शान रखने के लिए बनवाया, उसी किले की दीवारों के साथ सदा के लिए एक रूप हो गया। सरदार हरि सिंह नलवा उन वफादार देशभक्तों में थे। जिन्होंने अपनी हस्ती को मिटाकर भारत मां के उच्च सिंहासन को कायम रखा। 800 वर्ष के पुराने काले गुलामी के इतिहास को बदलकर आजादी का दिन भारतवासियों को दिखाया। खालसा पंथ के सच्चे संत सिपाही का दर्जा हासिल किया। उन्होंने कश्मीर को भारत में मिलाया। महाराजा रणजीत सिंह के सम्मान को चार चांद लगाये। पेशावर विजय से पहले पठान और मुगल सरे आम हिन्दु लड़कियों को उठाकर गजनी और अरब ले जाकर केवल दो दो पैसों में बेच देते थे। हरि सिंह के वीरतापूर्ण कारनामों के बाद यह धन्धा हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

हरि सिंह का नाम पंजाब एवं राष्ट्र की सब सीमाओं को पार करके अन्तर्राष्ट्रीय नक्शें में उजागर हुआ। नैपोलियन बोनापार्ट जैसे विश्व विजयी महान यौद्धा जरनैल के सामने फीके पड़ गए। लाहौर दरबार से अंग्रेजों के षड्यंत्र और लाहौर दरबार के कुछ गद्दारों के कारण समय सैनिक सहायता पेशावर ना पहुंच सकी। महाराजा रणजीत सिंह को हरिसिंह नलवा का पत्र दिखाया तक ना गया। पता लगने पर महाराजा अपने हरमन प्यारे जरनैल की मृत्यु का समाचार सुनकर मछली की तरह तड़पने लगा। अन्त में, महाराजा ने स्वयं हरिसिंह के मिशन को पूरा करने के लिए काबुल के द्वार तक विजय प्राप्त की और खालसाई झंडे को अफगानों के गढ़ में मिला दिया।

धन्य महाराज, धन्य हरि सिंह, धन्य पंथ खालसा और धन्य खालसा पंथ के सृजनहार, संत सिपाही विश्व गुरु गोबिन्द सिंह। जिन्होंने भारत मां को गुलामी के संगलों से छुड़ाकर स्वतंत्रता का हार पहिनाया। भारतवासियों को आजादी की खुशबू का नमूना दिखाया। बोले सो निहाल-सत् श्री अकाल।●

वार भाई गुरदास सिंह जी (४१-१५)

भाई गुरदास सिंह जी की वार जो उन्होंने श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज एवं पंथ खालसे के योद्धा स्वरूप के सन्दर्भ में लिखी है उसका एक अंश संगत के लिए प्रस्तुत है-

उहु गुरु गोबिंद होइ प्रगटिओ दसवाँ अवतारा॥
जिन अलख अकाल निरंजना जपिओ करतारा॥
जिन पंथ चलाइओ खालसा धरि तेज करारा।
सिर केस धारि गह खड़ग को सभ दुषट पछारा।
सील जत की कछ पहिर पकड़े हथिआरा।
सच फते बुलाई गुरू की जीतिओ रण भारा।
सभ दैत अरिण को घेर कर कीओ परिहारा।
तब सहिजे प्रगटिओ जगत मैं गुरु जाप अपारा।
ईउँ उपजे सिंघ भुजंगिए नील अंबर धारा।
तुरक दुषट सभ छै कीए हर नाम उचारा।
तिन आगै कोइ न ठहिरिओ भागे सिरदारा।
जह राजे शाह अमीरड़े होए सभ छारा।
फिर सुण कर अैसी धमक कउ काँपै गिर भारा।
तब सभ धरती हलचल भई छाडे घर बारा॥
ईउँ अैसे दुंद कलेष मै खपिओ संसारा॥
तिह बिन सतिगुरु को है नहीं भै काटणहारा।
गहि अैसे खड़ग दिखाईअै को सकै न झेला।
वाहु वाहु गोबिंद सिंह आपे गुरु चेला॥१५॥

Captain Lakshmi 24 Oct 1914 2012)

- Ravi Kumar, Mumbai

Captain Lakshmi (24 October 1914 23 July 2012) was a firebrand revolutionary, dedicated physician, freedom fighter and commander of the world's second women's regiment, the Rani of Jhansi regiment. World's first women army was formed by an Indian, Maharani Velu Nachiyar of Tamilnadu in 1770s with which she defeated the British in 1780 and ruled her kingdom Sivagangai till her death in 1790.

Her younger sister was Mrinalini Sarabhai is a celebrated Indian classical dancer, choreographer and instructor. Mrinalini was married to Vikram Sarabhai, who is considered as father of Indian Space program.

Indian art runs through her family. Lakshmi was also a very good singer. She sang with her heart, with all her convictions. Two of her songs, on a 78 RPM gramophone record, are today a priceless collector's item. The gramophone record (SM 2006) produced by National Gramophone Record Company, Bombay, is an indigenous company under the label Young India. The songs, 'Delhi chalo…' and 'Jaya ho jai…' were sung, the record label states, by Lt. Col. Laxmi and Party. These songs were those rendered by the INA members and were popular those days. The song 'Delhi chalo…' was a 'marching song' that INA soldiers sang when they trained and even when they marched out to battle. The second song, 'Jaya ho jai…' is actually the National Anthem of the Provisional Government of Free India that begins 'Subh sukh chain…' Another unique thing about this gramophone record is that it has been produced by National Gramophone Record Company. This was done deliberately. The then popular HMV was of foreign origin.

Captain Lakshmi was born as Lakshmi Swaminathan in Chennai on 24 October 1914 to S. Swaminathan, a lawyer who practiced criminal law at Madras High Court, and A.V. Ammukutty, better known as Ammu Swaminathan, a social worker and independence activist from the Vadakkath family of Anakkara in Palghat, Kerala. Lakshmi received an MBBS degree and a diploma in gynaecology and obstetrics from Madras. She worked as a doctor in the Government Kasturba Gandhi Hospital located at Triplicane Chennai.

In 1940, she left for Singapore. There she established a clinic for the poor, most of whom were migrant laborers from India. In 1942, during the surrender of Singapore by the British to the Japanese, Dr Lakshmi aided wounded prisoners of war, many of whom came together to form the Indian National Army (INA or Azad Hind Fauj).

Netaji Subhas Chandra Bose arrived in Singapore on 2 July 1943 and took charge of INA. In the next few days, at all his public meetings, Bose spoke of his determination to raise a women's regiment which would "fight for Indian Independence and make it complete". Dr Lakshmi helped him set up a women's regiment, called the Rani of Jhansi regiment. Women responded enthusiastically to join the all-women brigade and Dr. Lakshmi Swaminathan became Captain Lakshmi, a name and identity that would stay with her for life. Though she was popular as

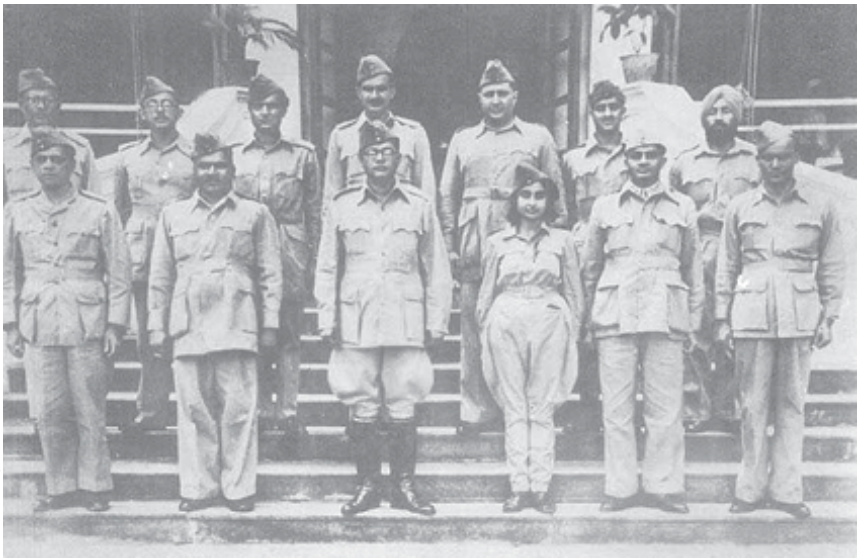

Captain Lakshmi, her official rank in the Indian National Army (INA) was Lt. Colonel. She was also the Minister of Women's Affairs in the Azad Hind government. There were 1,500 women fighters in INA and many Balika sainiks.

Her second in command, Janaki Athi Nahappan, also known as Janaky Devar (born 1925, died May 9, 2014) was from Malaysia (Cheras, Kuala Lumpur). Janaki later was a founding member of the Malaysian Indian Congress and one of the earliest women involved in the fight for Malaysian independence.

The INA marched to Burma with the Japanese army in December 1944, but by March 1945, with the tide of war turning against them, the INA leadership decided to beat a retreat before they could enter Imphal. Captain Lakshmi was arrested by the British army in May 1945, remaining in Burma until March 1946, when she was sent to India at a time when the INA trials in Delhi heightened popular discontent with and hastened the end of colonial rule.

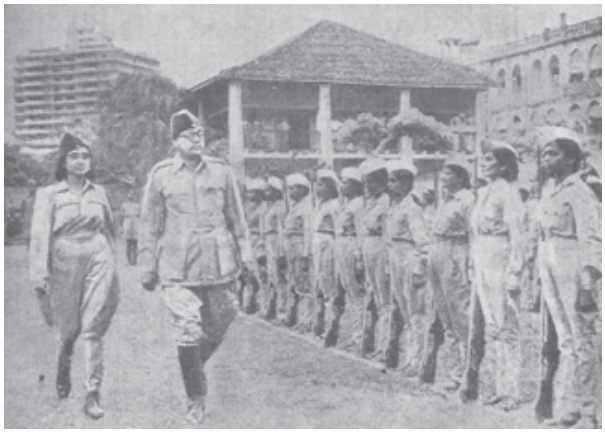

After her release from the custody of the British in 1946, Lakshmi travelled the length and breadth of the country to collect funds for INA Relief Committee and also to mobilise people against the British. Her gramophone records sold well enabling the INA to collect a good sum from the initiative.

Captain Lakshmi married Prem Kumar Sahgal in March 1947 in Lahore. After their

marriage, they settled in Kanpur, where she continued with her medical practice and aided the refugees who were arriving in large numbers following the Partition of India. In 1971, Capt Lakshmi Sehgal was elected to Rajya Sabha. During the Bangladesh crisis, she organized relief camps and medical aid in Calcutta for refugees who streamed into India from Bangladesh. She was one of the founding members of All India Democratic Women's Association in 1981 and led many of its activities and campaigns. She led a medical team to Bhopal after the gas tragedy in December 1984, worked towards restoring peace in Kanpur following the anti-Sikh riots of 1984 and was arrested for her participation in a campaign against the Miss World competition in Bangalore in 1996. She was still seeing patients regularly at her clinic in Kanpur in 2006, at the age of 92.

In 1998, she was awarded the Padma Vibhushan by Indian president K. R. Narayanan. In 2002, she stood as a candidate in the presidential elections. She was the sole opponent of A.P.J. Abdul Kalam, who emerged victorious. Capt Lakshmi died on 23 July 2012 at the age of 97 at Kanpur. Her body was donated to Kanpur Medical college for medical research. Captain Lakshmi Sehgal International Airport is proposed at Kanpur Dehat district.

तिन बेदीअन की कुल बिखै प्रगटे नानक राइ।।
सभ स्खिन को सुख दए जह तह भए सहाइ।।४।।

चौपई

तीन इह कल मो धरमु चलायो।। सभ साधन को राहु बतायो।।
जो ताँ के मारग आए।। ते कबहुँ नहि पाप संताए।।५।।

गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज, विचित्र नाटक

The Lion hearted Jassa Singh Ahluwalia of Punjab (1718-83)

Great Hero of India

- Sumant Dhamija

The year was 1762. In a forgotten corner of the world, Punjab was fighting for her freedom. Ahmad Shah Abdali (Durrani), lord of Punjab whose vassal included the Mughal emperor in Delhi and the world's greatest conqueror of his time, was ranged against Jassa Singh Ahluwalia 'the mountain', Padshah of the Sikhs.

Earlier in the year Ahmad Shah, in what was yet another in a stream of unending invasions of Punjab commencing with Mahmud of Ghazni in 1001, had inflicted a crushing defeat on the Sikhs in what is known in their history as Wada Ghallugara. when 25,000 Sikhs including women and children had been slaughtered at Kup, about 250 kms northwest of Delhi. Ahmad Shah had then marched to the Harimandir Sahib (Golden Temple) at Amritsar, the holiest place of worship of the Sikhs, blew it up with gunpowder so that not a single brick remained, and then to add insult to injury, proceeded to fill the holy tank with the carcasses of dead cows. The time for vengeance would come.

When later in October, Ahmad Shah was at Lahore and realized that the Sikhs were gathered in strength for their annual meeting, he decided to deal with his greatest detractors, a death blow. The omens were far from propitious. It was Diwali-the 17th October and a full solar eclipse was in progress. Ahmad Shah was confident. He had 50000 well-trained battle hardened Afghans. The Sikh army, already filled with a murderous hate, realizing that their quest for freedom and sovereignty would be shattered with defeat, fought with a primeval ferociousness. Shouting Wahe Guruji Ka Khalsa, Wahe Guruji ki Fateh, their battle cry, they charged the Afghans. George Forrester (1783) recounts this engagement… " the Sicque(sic) nation amounting to 60,000 cavalry, had formed a junction at the ruins of Amritsar, where they resolved to… pledge their national existence…the Sicques roused by the fury of a desperate revenge, in sight also of the ground sacred to (them), whose monuments were destroyed by the enemy they were to combat, displayed during a bloody contest, which lasted from morning until night, an enthusiastic and fierce courage, which ultimately forced Ahmad Shah to draw off his army and retire with precipitation to Lahore." Whilst Jassa Singh's victory was not complete or comprehensive, as with the Mongol defeat by the Mamelukes of Egypt in 1260 it shattered the myth of Abdali's invincibility.

In April 1761, Abdali was returning triumphant having destroyed Maratha power at the third battle of Panipat. His booty included 2200 Hindu women being taken to Afghanistan to be sold into slavery. The Sikhs were at their bi-annual meeting at Amritsar when the relatives of the women pleaded for succor. Jassa Singh left immediately with a volunteer force, caught up with the Afghans at the River Sutlej at Goindwal, rescued the women and had them gallantly escorted to their families. This action which required great audacity, swift and faultless execution and a complete indifference to danger, made him a household name in north India. Henceforth he was also known as Bandhi Chhor or Liberator.

Later in 1764, Jassa Singh, commanding the Khalsa armies conquered Sarhind, the richest province of the empire. Jassa Singh's share of the cash spoils amounted to 9 lac rupees. He donated this entire amount to the rebuilding of the Harimandir Sahib which is as it stands today! This great act of generosity, referred to as Guru ki Chaddar endeared him forever to his religious minded people.

These are but some of the actions that caught the attention of the oppressed people of Punjab who joined the cause in droves. Jassa Singh translated this energy and enthusiasm into military and diplomatic victories against both the Mughals and, after 1752, the Afghans. For historical comparison, a similar feat was performed by the legendary French hero, Charles Martel 'The hammer' who famously defeated the Moorish army of Abd-ar-Rehman in 732 AD at the battle of Tours(Portiers). He then cleared southern France of foreign occupation making his country safe from foreign occupation.

Jassa Singh was born on 3 may 1718 in village Ahlo near Lahore. At this time Punjab was completely in ruins - oppression was at its height, the movement for freedom having been crushed with the horrific execution of Banda Bahadur and his followers.

Jassa's father died when he was 5 years old and he together with his mother spent the next 7 years in Delhi with Mata Sundari, Guru Gobind's widow where he imbibed the lessons of the Gurus, making Guru Gobind's mission his own. Soon he was to leave the safe environment of Delhi to claim his destiny, to a life of adventure in the heart of Punjab. After an initial period with his uncle, Bhag Singh's jatha, he joined his mentor, Kapur Singh's warriors, his first job being to feed the horses. Who knew one day he would be

king! The young Jassa honed his martial skills-hunting wild boar and partridge helped; and the threat of attack (Emperor Farukh Siyyar having passed an edict with incentives of 50 rupees per Sikh head!) and constant skirmishes made him fearless.

The young and enthusiastic Jassa soon made a mark for himself. After his first notable exploit-against Murtaza Khan, the chief supplier of Central Asian horses to the emperor, there was no looking back. Distinguishing himself in the hit and run attacks on Nadir Shah's baggage train when he was returning triumphant from Delhi (1739), laden with booty, 1748 he used the confusion surrounding Abdali's first invasion (1748) to lead the Dal Khalsa (Sikh army) to capture Amritsar from Salabat Khan whom he killed. Amritsar would now become the Sikh rallying point and indeed the centre of their symbolic resistance. Resistance. In the Baisakhi meeting that followed-on 29 March 1748, Jassa Singh was made commander-in-chief of the Dal Khalsa now divided into 11 groupings or misls. Jassa Singh had been made commander-in-chief of the Dal Khalsa (army) which was now divided into 11 divisions or misls from the previous 65.These would act in unison and were subject to Gurumatas, (resolutions) taken at Amritsar, which were binding on all. In 1753, before his death, Kapur Singh, his mentor, proclaimed Jassa Singh the head of the panth, giving him Guru Gobind Singh's mace to reinforce his leadership of the community. The stage was set for the conquest of the whole of Punjab.

Jassa Singh's conquering career really took off after this event. His victories included the defeat (in combination with Kaura Mal) of Shah Nawaz of Multan; he conquered Khwaspur and Fatehabad in 1753; he defeated Aziz Beg and Bakhinda Khan (1754), the commanders who attacked Amritsar. Along with Adina beg Khan, he defeated Buland Khan at Mahilpur (1757). Again in 1757 he defeated Saadat Khan, Abdali's representative at Jalandhar. In 1758 he defeated Ubaidulla Khan, the Afghan general sent by Abdali. Shortly afterwards, Hira Mal and Gulsher Khan were defeated and killed by him and in 1760 he got the better of Abdali's outstanding general, Jahan Khan. Along with Charat Singh Suckerchakia, Ranjit Singh's grandfather, he defeated Ubaid Khan and subsequently conquered Lahore(1761). Coins were struck to mark this victory. In 1764 he defeated Zain Khan and conquered Sarhind. From this period on Abdali was on the defensive and during his return after his invasion in 1764/5, his authority was confined to his own camp! Lahore was occupied by the Dal Khalsa and the Gobind Shahi coins were struck in 1765 as the formal declaration of their sovereign status. (JS Grewal; Sikh ideology, polity and social order;1996:100-101). Punjab was now free after over 700 years. Jassa Singh did not stop here- Sikh conquests continued, culminating in the conquest of Delhi on 11 March, 1783. Jassa Singh, to prove a point, sat on the throne of Hindustan! Whilst he left shortly afterwards, he ensured, through his lieutenant, Baghel Singh, the building of the eight main gurudwaras of Delhi. At the time of his death, the combined armies of the Dal Khalsa (Sikh army)totaled approximately 200,000 men with 60-70,000 horse available at any given time. Sikh rule extended from Lahore, Multan to Jammu, Kashmir, the Kangra hills to the environs of Delhi. Their influence extended even further-to the Ganga Doab, Rajasthan and Agra. Abdali invaded again in 1769 but could go no further than the River Sutlej. After his death in 1772, his son Shah Zaman, was equally unsuccessful with respect to Punjab. It had taken Jassa Singh and his misl leaders over two decades of fighting and diplomatic maneuvers. The Mughals had been suppressed, the Afghans repulsed and Punjab now belonged to her people.

How was all this achieved? How did the independent minded Sikhs given the democratic nature of their faith and their natural resentment to authority, combine together? And how did the misl leaders, who were themselves competing against each other, display unison under a single command? And more importantly, why was Jassa Singh's army when it fought alone or jointly, so successful?

Of course, the foundations had already been laid by Guru Nanak who started a peaceful religion in the 16th century that appealed to the masses. His teachings gave character and a cohesiveness to the people. Nine gurus of great character followed and built on this foundation. Heroic sacrifices added to unity. Under Guru Gobind Singh Sikhism started having militant undertones first, under Guru Hargobind(1606-44) and finally under Guru Gubind Singh (1675-1708). The accent had now changed from the love of the community, hard work and charity to the punishment of transgressors and oppressors- the Muslim rulers and their agents. With his creation of the Khalsa in 1699, a militant brotherhood was formed, whose aim was nothing short of freedom and sovereignty. Sikh society was revolutionized in a short time and the 'the sparrow' would now 'hunt the hawk'. But Guru Goboind died without fulfilling his mission. The task was carried

forward by Banda Bahadur (1707-15), who although finally defeated and horrifically killed, had through his spectacular victories, given the Punjabis a taste of freedom and sovereignty they would never forget. The Dal Khalsa (and the individual misls) too were now better organized with the necessary chain of command and incentives in a manner to produce military success. The guerrilla tactics they used had become second nature to them and were proving to be increasingly effective The threat of the Mughal army and later, Abdali were to become further unifying forces for the Sikhs. And finally there was the fighting quality inherent in the Sikhs. Even the Afghans were impressed. Nur Mohammad, brought along by Abdali to write an account of his 1764-65 campaign initially referred to the Sikhs as dogs but reluctantly changed his mind by the end of the campaign. In his Jangnama he wrote'….. the designation of Singh means lion, and lions indeed they are. Every one of them behaves like a lion in battle.'

The answer lies partly in the great generalship of Jassa Singh along with the other misl sardars like Charat and Maha Singh Suckerchakia, Hari Singh Bhangi, Jai Singh Kanhahiya and Jassa Singh Ramgarhia.. Jassa Singh in particular showed strategic boldness and good sense. But for a successful commander of a protracted campaign- in this case lasting over two decades- much more than generalship is required. As Clauswitz describes this quality "As the moral forces in one individual after another become prostrated, the whole inertia of the mass rests on the Will of the Commander; by the spark in his breast , by the light of his spirit, the spark of purpose, the light of hope, must be kindled afresh in others". This is the kind of leadership required- the exercise of psychological power by one individual over the rest, this quality possessed by Jassa Singh in full measure. Jassa Singh was charismatic. His physical presence inspired awe- he was tall, broad shouldered and muscular with penetrating dark eyes. His proficiency in the use of arms was legendary, his unusually long arms giving him an edge as a swordsman. He was known to challenge opposing generals in a one-to-one contest in his booming voice, this display of confidence being a great morale booster to his troops.

His troops saw his courage and fearlessness at close quarters- he was reputed to have 32 wounds on his body, 22 from a single defensive engagement in 1762! He was able to instill in the Sikhs, faith in God and the belief that, given the justness of their cause, ultimate victory would be theirs. The misl leaders realised the extent of his determination and that he was the only one among them who felt certain of victory. This was so even when all appeared to be lost. Their further awe of him was not only because of his closeness to Guru Gobind's family, but also because morally he stood tall . At a time when revenge against their oppressors was foremost on the minds of his co-religionists, he ensured there were no cases of prisoners murdered in cold blood or any maltreatment of women in areas where his armies operated. Enemy soldiers were allowed to go free if they laid down their arms. He never allowed any pressure to be put in the name of religion on the basis of his belief, central to Hinduism and Sikhism that there are many ways leading to God. He was against tyranny, never Islam. He did however put his foot down on cow slaughter and the Mullah's call for evening prayer which were both banned.

Lastly and this is crucial for such leadership, he showed what is called 'superior predicative judgement'('Lords of War' by Correlli Barnett), the ability to accurately forsee the consequences of his actions- much in evidence both in victory and defeat. His successes only increased his aura! Jassa Singh further kept the chiefs loyal to him through his statesmanship and diplomacy. He showed dramatic self restraint (and sometimes excessive generosity) he could easily have added more territories but preferred to let the other misls take a greater share for the sake of unity; similarly he could have ruled Lahore from 1765 onwards having a greater claim to it and even having conquered it in 1761 but let Hari Singh, Lehna Singh and Sobha Singh Kanahiya do so for the same reason. He ensured timely help for the misl sardars There was no misl chief who was not beholden to him and so he got them to unite when most required. He helped Charat Singh defeat Ubed Khan, the governor of Lahore; he helped the Bhangis defeat the Afghans at Qasur(1779) and saved Patiala from Abdul Ahad Khan (1779). He maintained a balance of power in the region and for example stood up to all the misl chief bent on destroying Patiala, a co-religionist but friendly with the Afghans -realizing how important unity was for the greater purpose. 'The house of Patiala would have been snuffed out of its infancy but for his ungrudging and benign support' (Natwar Singh- 'The Magnificent Maharaja' 1988:26). He gained influence through close strategic relations with Suraj Mal and Jawahar Singh- the Jat rulers of Bharatpur whom he helped militarily against the Rohillas, Mughals, Rajputs and Marathas.

His personality, moral superiority, diplomatic skills and military strategy made the chiefs and the Dal Khalsa look up to him as their supreme and revered leader and as the true successor to Guru Gobind Singh's mission. He was regarded as the warrior saint sent for their salvation! Indeed he was as much a saint as a soldier possibly could be.

The territories acquired and subjugated and the conquest of Lahore, Sarhind and Delhi, were great achievements of Jassa Singh and reflected the greater achievement of freedom for all of Punjab and sovereignty for its people. But the impact of Jassa Singh was much greater than the sum total of his achievements. Jassa Singh gave victory at a time when people felt powerless against their tyrannical oppressors. When Aurangzeb had killed thousands, converted even more, the ruling Hindu elites and so the bulk of the population accepted it and made the necessary adjustments to their lives. Ordinary folk, mostly Hindus who became Sikhs, had found new strength from Guru Gobind Singh who resolved to remove the sense of failing and helplessness among them. Jassa Singh continued this work and awakened a sense of their basic dignity. In the 18th century, the Sikhs were transformed from being dependent on their masters for their very lives to independent landowners and rulers in their own right - within two generations. There was something extraordinarily satisfying for Punjab's people in this feeling of freedom, and then of power after centuries of subjugation and great misfortune. Sikh character had changed fundamentally- chardian kala- the exuberance and optimism they had willed themselves to feel in times of adversity had now become a permanent feature of their psyche, helped by military victories following scores of defeats and humiliations. And Jassa Singh had defeated a foreign power (and the greatest in the world of his time)- for the very first time in post Islamic history! With the defence of India he and the misl chiefs ensured the preservation of a more tolerant mind-set and culture. Maharaj Ranjit Singh (1790-1839), built on these achievements, created a unified Sikh state and extended the frontiers of Punjab.

The real hero of India was of course Guru Gobind Singh, for the revolutionary steps he took to create the Khalsa in 1699, and indeed the expectations he created from the way he lived his life, which put into motion the fight for freedom. Jassa Singh would have unhesitatingly accepted this analysis with all humility- that was his character. Jassa Singh, on whom was thrust great responsibility, lived a simple life. A true follower of the Gurus, he combined his quest for freedom with a deep sense of tolerance and respect for all religions, which showed in the generosity of his character. It is said that Jassa Singh was a Sikh by honest conviction perhaps more so than Maharaj Ranjit Singh. 'It is no coincidence that (Jassa Singh) who embodied Nanak's ideals, and lived his life in the image of Guru Gobind Singh, was the more revered and beloved of the two. (Griffin;1993:418).

What does Jassa Singh's life teach us and what are the lessons for India? Jassa Singh fought against all odds and came out victorious and gave the people of north India a feeling of success, a feeling they had not had for centuries. This is exactly the kind of feeling of confidence and achievement required today. The lesson learnt from Jassa Singh is reflected in what Napoleon said that there were 'two powers in the world- the sword and the mind. In the long run the sword is always beaten by the mind'. Jassa Singh's life teaches us that to be winners we have to look at problems squarely in the eye and that there is absolutely no need to be awed by anyone or any country- in our case particularly by China! Here, taking a leaf from Jassa Singh's thinking and actions there might be a requirement amongst our leadership, for example, for a completely different approach and mindset for the conduct of a possible war. The strategic creation of high maneuverability in the armed forces, freedom of action given to them leading to actions undertaken on our terms, using tactics and in terrain advantageous to us would then be the object of focus. This may require doing away with concepts such as 'fighting for every inch' but would lead inexorably to success. It goes without saying that the media must be managed in the event of war - to keep its (and hence the nation's) attention on the armed forces' view of national interest! The very fact of this change in thinking and attitude will inevitably help raise morale all round for the ultimate battle of the mind!

From Jassa Singh we graphically learn that success and victory comes with a clear vision, focus on key goals, equanimity in the face of crisis (or reverse) , dogged and determined action and the will to fight to the bitter end. We also learn not to take short cuts- Abdali had offered Jassa Singh the rulership of Punjab in his name. Jassa Singh refused and defeated him subsequently. Finally, for grand success, one factor was essential- a deep love and respect for the country- to be regarded as a mother-

(see 31 page)

शेर-ए-पंजाब

महाराजा रणजीत सिंह

- डॉ. मनमोहन सिंह

''श्री प्यारा सिंह पद्म'' ने लिखा है कि सिख धर्म के प्रसार का जमाना एक विचित्र पेड़ की भांति था। जिसके ऊपर महाबली रणजीत सिंह ''शेर-ए-पंजाब' खूबसूरत फूल पैदा हुआ। जिसकी सुगन्ध ने भारत में ही नहीं बल्कि एशिया व यूरोप में भी खालसा पंथ व पंजाब की खुशबू पहुंचायी। एलैगजैंडर बनर्जी ने लिखा है कि मैं किसी भी भारतीय से इतना प्रभावित नहीं हुआ, जितना कि महाराजा रणजीत सिंह से हुआ। वे अपनी शक्ति का प्रयोग इस प्रकार करते थे कि कमाल कर देते थे। यह विशेषता मैंने किसी दूसरे में नहीं देखी। ऑस्ट्रीयाई सैलानी बैरन हयूगाला ने उनकी सेना की शक्ति व जौहर देखने के बाद अपने सफरनामें लिखा है कि उनकी सैनिक सूझ-बूझ व शास्त्र विद्या देखकर मैं निरपक्ष होकर यह कह सकता हूं कि ये विदेशी फौजों के ऊपर अवश्य विजय प्राप्त कर सकते हैं। अंग्रेज फौज का अफसर 'केपटन मरे' लिखता है कि मैं महाराजा की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। जिसका कहना है कि महाराजा रणजीत सिंह दुनिया का नक्शा बदलने वालों में से एक था। अगर भारत में अंग्रेज शासक न आते तो वे दिल्ली से आगे तक अपनी सरकार की सीमा बढ़ा सकते थे। एक अंग्रेज कहता है कि वे सारे एशिया को जीत सकते थे इतनी योग्यता उनके पास थी परन्तु चारों तरफ से अंग्रेजों ने उन्हें घेर रखा था। इन सभी तथ्यों को जानने से पता चलता है कि महाराजा रणजीत सिंह, दूरदर्शी रणनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ, साहसी, बाहुबली व बहादुर वीर थे।

महाराजा रणजीत सिंह का जन्म 2 अक्टूबर 1780 ईस्वीं में सरदार महासिंह के घर हुआ था। रणजीत सिंह का बहुत खुशियों से लालन-पालन किया गया। रणजीत सिंह के पिता का अधिकतर समय लड़ाई में ही व्यतीत हुआ था जिस कारण से रणजीत सिंह को पढ़ाने में असफल रहे। महाराजा रणजीत सिंह जी स्वयं पढ़ाई में ज्यादा रुचि नहीं रखते थे। दूसरा कारण उनके न पढ़ने का यह था कि जब उनकी उम्र 6 साल ही थी तो उनको चेचक निकल आई जिसके कारण उनकी जिन्दगी खतरें में पड़ गयी थी। पिता जी ने बहुत दान पुण्य किया। अत: रणजीत सिंह ठीक हो गए, परन्तु उनकी एक आंख बीमारी के कारण खराब हो गई। प्रत्येक आदमी कहने लगा था कि महाराजा सभी को एक आंख से देखता है, उनके यहां कोई भी मतभेद नहीं। इस बारे में यह बात भी मशहूर थी कि एक बार एक अग्रेज ने उनके मंत्री ने पूछा कि महाराजा का कौन सी आंख खराब है तो मंत्री ने उत्तर दिया कि मुझे इस बारे में कुछ नहीं पता, क्योंकि मैंने कभी भी अपनी आंखे उठाकर महाराजा के चेहरे की तरफ नहीं देखा। मेरी आंख तो हमेशा महाराजा के चरणों में लगी रहती है।

सरदार महासिह 1792 में कुछ समय बीमार होने के बाद स्वर्गवासी हो गए थे। इसके बाद महाराजा रणजीत सिंह ''शुकरचकिया मिसल'' के मालिक व जरनैल बन गए तथा 'गुजरांवाला' को अपनी राजधानी बनाया। हालांकि कुछ लोगों का विचार था कि महाराजा रणजीत सिंह को मिसलों का कार्य अभी नहीं संभालना चाहिए था, परन्तु उन्होंने अपने आप कंट्रोल करने का वचन दिया। उनकी शादी 'कन्हैया' मिसल के सरदार जयसिंह की पौती महताब कौर से हुई। इस प्रकार दो मिसलों के आपसी संबंध व शक्ति बढ़ गई। जिससे दुसरे अफगानिस्तानी जब भी लड़ाई चाहते थे वे सभी पंजाब के ऊपर चढ़ाई करके दिल्ली तक पहुंच जाते थे, परन्तु महाराजा की रणनीति से उनका रास्ता बिल्कुल बन्द हो गया था।

महाराजा रणजीत सिंह, जो एक महान जरनैल भी था, का विचार था कि एक बार बड़ा पंजाब बनाया जाए तथा तभी रियासतों को अपने राज्य में लिया जाये। वे यह भी चाहते थे कि उनके घोड़े दिल्ली पार जमना का पानी पियें पर लुधियाना व पूर्वी दिशा की रियासतों ने साथ न दिया, जिस कारण उन्हें 1609 में अंग्रेजों के साथ संधी करने पड़ी तथा दरिया सतलुज को ही पंजाब की सीमा मानना पड़ा।

महाराजा का इतना बोलबाला था कि अंग्रेजों का दिल्ली पर अधिकार होने के बावजूद भी वे पंजाब पर हमला न कर सके। पंजाब लगभग 100 साल तक अंग्रेजों की गुलामी में रहा, जबकि समूचा भारत 250 साल तक अंग्रेजों का गुलाम रहा। महाराजा की फौज में फ्रांसीसी व इटालवी जरनैल भी थे, जिससे पता लगता है कि भारत में छोटे से प्रदेश की सरकार के अग्रसर ही नहीं थे, बल्कि संसार में उनकी प्रसिद्धि थी तथा वे फौजीमाहिरों के कदरदान भी थे।

महाराजा ने ''जसवन्त राव होलकर'', जिस का राज्य अंग्रेजों ने छीन लिया था, उसका राज्य वापस दिलवाने में सहायता की। महाराजा ने अंग्रेजों को केवल सन्देश ही भेजा था कि ऐसी बे-इन्साफी नहीं होनी चाहिए। अंग्रेज महाराजा से डरते थे अत: उन्होंने हुलकर की रियासत वापस कर दी। इस प्रकार भारत की दूसरी रियासतों के राजाओं को भी महाराजा की शक्ति का पता लग गया तथा कई रियासतों के राजाओं की तरफ से महाराजा को तोहफें भेंट किए गये। 1838 में अंग्रेजों ने महाराजा से फौजी सहायता मांगी तथा लार्ड आकलेडा ने उनके साथ मुलाकात भी की। 'शाह सुजाह' को दूसरे ग्रुप में निकाल दिया जोकि गद्दी के लिए उम्मीदवार था, अत: शाह सुजाह की सहायता अंग्रेजों तथा महाराजा ने की। काबुल के ऊपर फौजी हमला किया गया तथा शाह सुजाह को गद्दी दिलवाकर फौजें वापस आ गयी। इस प्रकार अफगानिस्तान में यह बात फैल गयी कि काबुल का बादशाह आगे से वह बन सकगा जिसे लाहौर दरबार की सहायता मिलेगी।

महाराजा बहादुर और दूरदर्शी थे। उन्होंने अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति देशकर अनुमान लगा लिया था जिस प्रकार अंग्रेज अपनी शक्ति व राज्य क्षेत्र बहा रहे हैं, वह दिन दूर नहीं जबकि सिखों को भी अंग्रेजों से टक्कर लेनी पड़ेगी। इसीलिए उन्होंने अपनी फौज को संगठित करने के लिए पश्चिमी तरीका अपनाया सेना को चार भागों में बांटा गया, पैदल, सेना, तोपखाना, घुड़सवार सेना तथा जगीरदारी, सुरक्षित सेना। पैदल सेना पश्चिमी आधार पर तैयार की गयी क्योंकि भारत में अंग्रेजों तथा फ्रांसीसियों के आने से यह बात स्पष्ट हो गई

थी कि घुड़सवार फौज का हमला बेशक कितना भी तेज क्यों न हो, परन्तु वह पैदल फौज की लगातार गोलियों की बौछार के सामने नहीं ठहर सकते। प्रत्येक पैदल सिपाही को एक बन्दूक, शमशीर व संगीन दी जाती थी। इसके अलावा प्रत्येक सैनिक के पास सिक्के की पचास गोलियां तथा पेटी के साथ छाबे की कुप्पी में जरूरती बारूद भी होता था। ये शास्त्र लाहौर में बनाये जाते थे। सेना को पश्चिमी ढंग से सिखाने के लिए अनेक अंग्रेज व फ्रांसीसी अधिकारी सेना में भर्ती किए गए। पैदल सैनिकों की गिनती 27,000 तक पहुंच गई थी।

महाराजा ने अपने तोपखाने को बहुत ही शक्तिशाली बनाया तथा उसमें अलग-अलग आकारों की तोपों बनायी गयीं। ''विलयम अजरदन'' के अनुसार उस समय देशी रियासतों में शक्तिशाली तोपखाना कहीं भी नहीं था। महाराजा के अन्तिम दिनों तक 470 तोपें तथा 4,535 गोलदाज थे, जोकि गोला चलाने में इतने प्रवीण हो गये थे कि अंग्रेज भी उनका लौहा मानने लगे थे। उनकी घुड़सवार सेना के प्रति बहुत ही रूचि थी तथा घोड़ो से उन्हें बहुत प्यार था, वे प्रत्येक साल 30,000 के घोड़े खरीदते थे। उनका रसाला एशिया में सबसे सुन्दर व चुस्त था। जगीरदार फौज जोकि बहुत समय से चल रही थी वह भी महाराजा ने रखी। जिन्हें महाराजा जागीरें देता था उनके लिए यह जरूरी था कि बाद में वे अपनी फौजें भेंजे। जगीरदारों के अधीन सैनिकों की गिनती लगभग 3500 थी। किले की सुरक्षा के लिए भी किले अन्दर फौज रहती थी।

महाराजा रणजीत सिंह बहुत ही दयालु महाराजा थे। एक बार उनके राज्य में अकाल पड़ गया तो महाराजा ने ऐलान किया जिसे अनाज की जरूरत है वह राजा के महलों से अनाज ले जाए। एक बूढ़ा व्यक्ति आनाज लेने आया। परन्तु उससे अनाज की गांठ उठायी न गयी। महाराजा ने अपना वेश बदलकर वह गांठ उस बूढ़े के घर आप सिर पर उठाकर पहुंचायी। इसी प्रकार एक बार लड़के बेरी से बेर तोड़ रहे थे और महाराजा भी उधर से ही गुजर रहे थे तो एक लड़के के हाथ से उनको पत्थर लग गया।

महाराजा ने सारे लड़कों को अपने पास बुलाकर पूछा क्या करते हो? लड़के घबरा गए तथा डरते-डरते उन्होंने कहा बेर तोड़ रहे हैं। इस पर महाराजा ने अपने अधिकारियों को कहा कि बेरी को पत्थर मारने से बेर मिलते है तो यह पत्थर राजा को मारने से भी इनको कुछ मिलना चाहिए, इसीलिए उन लड़कों को भी पैसे दिए गए। महाराजा धर्म निरपेक्ष शासक थे। उनकी सेना में प्रत्येक धर्म के जवान थे तथा वे उच्च पदों पर आसीन थे। महाराजा बेशक सिख थे, परन्तु उन्होंने अपने राज्य समय में मंदिर, मस्जिद व गिरजाघर भी बनवाये। इनका काम-काज चलाने के लिए वे इन्हें वित्तीय सहायता भी देते थे।

उस महान पुरुष का देहान्त 1839 में हुआ। इसके बाद अंग्रेजों ने बड़ी गहरी चाल से 1849 में पंजाब को अंग्रेज राज्य का भाग बना लिया। फिर ''शाह मोहम्मद'' ने महाराजा रणजीत सिंह का इस संसार में न होना, सिख सेनाओं की हार का कारण माना है। ●

सत्संग से शान्ति

परमात्मा के मिलने पर दुख कभी भी आयेगा ही नहीं। आपको ही परमात्मा के सुख में सुखी रहने वालों के दर्शनों से शान्ति मिलेगी। रुपयों के, भोगों के याद करने से जलन पैदा होगी। जितना जितना इनका चिन्तन होगा उतनी हृदय में आग लगेगी। अशान्ति पैदा होगी। ह्रास होगा, पतन होगा, रोग होंगे, शोक होगा, चिन्ता होगी, भय होगा, उद्वेग होगा। मार आफत-ही-आफत होगी। भगवान् की याद करते ही शान्ति, आनन्द, प्रसन्नता, मस्ती आवेगी भीतर से।

कंचन खान खुली घट मांही।
रामदास के टोटो नाँही॥

भीतर से आनन्द की खान खुल जाएगी। ऐसे पुरुष के कहीं दर्शन मिल जाएं तो आपको शान्ति मिलेगी, आपका पाप कटेगा। महान् शान्ति मिलेगी, वह किसी भोग से नहीं मिल सकती। शास्त्रों में आता है-

येषां संस्मरणात् पुतः सद्यः शुद्धयन्ति वै गृहाः॥

उन महापुरुषों के याद करने से घर के घर पवित्र हो जाते हैं। जिनके हृदय में भोगों का राग नहीं है, जो पदार्थों के गुलाम नहीं है, भोगों के, रुपयों के दास नहीं हैं-ऐसे पुरुषों के दर्शन से शान्ति मिलती है, पाप दूर होता है। कोई भोग नहीं है, न शब्द है, न स्पर्श है, न रूप है, न रस है, न गन्ध है, न मान है, न बड़ाई है, न आराम है-ये आठ चीजें खींचने वाली हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध-ये पांच विषय और मान, बड़ाई और आराम ये तीन-कुल आठ हैं। इन आठ चीजों से सुख होता है। खूब याद कर लो।

सत्संग से शान्ति मिलती है कि नहीं। आपने अगर सत्संग किया है मन लगा करके, तो आप नट नहीं सकते। सच्चर्चा होती है, रामायण का पाठ हो रहा है, उस पाठ में क्या रुपये मिलते हैं? क्या भोग मिलते हैं? क्या मान मिलता है? क्या बडाई मिलती है? क्या शरीर में आराम ज्यादा मिलता है। शब्द्, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध में से क्या है? आठों बातें नहीं है और सुख मिलता है तो वह किस चीज का सुख है-बताओ?

कहते हैं-भगवान् का सुख मिलता नहीं है। आप उसका तिरस्कार करते हो, अपमान करते हो, मिले बिना कोई रह नहीं सकता। पारमार्थिक सुख के बिना कोइ जी नहीं सकता। जीने का केवल अगर कोई स्रोत है तो परमात्मा है। उसी से ही आप जी रहे हो नहीं तो मर जाओगे। आपकी दृष्टि भ्रष्ट हो गयी, बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। अकल को बेच दिया रुपयों में, टकों में। अकल का टका हो गया कैसे बतावें? अब बोलो, आपने रामायण का पाठ किया सामने, आपने देखा। उस रामायण-पाठ किया सामने, आपने देखा। उस रामायण पाठ में रुपये मिले हैं क्या? फिर भी लोग खिंचते हैं, पढ़ते हैं क्या सुख है यह। परमात्मा सुख मिला नहीं तो क्या मिला है। ●

Battle of Haifa on 22 and 23 September 1918

- **Ravi Kumar**, Mumbai

Liberation of Haifa by Indian soldiers is one of the greatest battles of World War-I.

The air reconnaissance of Haifa seemed to indicate that the town was evacuated and at 1330 hrs on 22nd Sept 1918, a detachment of Light Armoured Cars under Brig Gen A. D'A. King advanced along the Nazareth road to occupy Haifa. Before the town was reached however they found that the road was barricaded. At this point they were shelled from the slopes of Mount Carmel and subjected to machine gun fire. The column withdrew with slight casualties.

At night Major Dalpat Singh had a vision of Devi Maa (Mata Parvati, Indian Mother Goddess of Valor and courage) who chided him for withdrawing. She reminded him of the great Rajput tradition of laying down ones life but never withdrawing from the battlefield. He woke up and shared his dream with other soldiers and they too felt that they will have no face to show their Maharajas (Jodhpur and Mysore Maharajas) and the people of their villages who cherish bravery in battlefields. Soldiers belonging to Jodhpur and Mysore Maharaja decided to attack Haifa no matter how strongly equipped and fortified the enemy was.

The next day, 23rd September 1918, the 14th and 15th Cavalry Brigades of the Maharajas commenced their march on Haifa at 0500 hrs. Their route passed along the foot of the Mount Carmel range and was kept in a confined strip by the boggy ground along the River Kishon and its tributary streams. This left little room in which cavalry could manoeuvre. At 1015 hrs as the 15th Cavalry Brigade approached Haifa they came under fire from 77mm guns on Mount Carmel. The 14th Cavalry Brigade together with the divisional headquarters occupied the Kishon railway-bridge and 'Harosheth of the Gentiles' at midday.

At 1400 hrs the Jodhpur Lancers supported by 'B' Battery H.A.C. attacked Haifa and encountered strong resistance, the lancers making a brilliant charge in the face of the enemy's machine guns. A squadron of the Mysore Lancers (supported by a squadron of Sherwood Rangers) had meanwhile gone over Mount Carmel to turn the town from the south. They captured two naval guns on the ridge of the Carmel and also made a gallant charge against the fire of the enemy's machine guns.

After street fighting, the town was captured at about 1500 hrs with 1,352 prisoners, 17 guns and 11 machine guns being taken. Not without cost however. In the main text of his Despatch of 31st October 1918, General Allenby particularly mentioned: "Whilst the Mysore Lancers were clearing the rocky slopes of Mount Carmel, the Jodhpur Lancers charged through the defile, and riding over the enemy's machine guns, galloped into the town, where a number of Turks were speared in the streets. Colonel Thakur Dalpat Singh, M.C., fell gallantly leading the charge."

Victory was complete. A vital new supply base had fallen into British hands. Four days later, the landing of supplies started. Without a doubt this was the most successful mounted action of its scale in the course of the campaign. It was won by a weak brigade of only two regiments (belonging to Jodhpur and Mysore Maharajas) and a single 12-pounder battery pitted against about 1,000 well-armed troops. The speed and daring, dash and boldness of the two Indian Imperial Service regiments, in conjunction with the skilful flanking movements devised by Lieutenant-Colonel Holden, the senior Special Service Officer, were what made the action such a success. The speed and good order demonstrated by the leading squadron of the Jodhporeans when it was forced to change direction under heavy fire, were other vital ingredients in what was almost certainly the only occasion in history when a fortified town was captured by cavalry at the gallop.

The Mysore Lancers returned home on February 21, 1920, to a rousing reception by His Highness Nalwadi Krishna Raja Wadiyar.

Indian soldiers will be lauded in Israeli textbooks for freeing Haifa city

Haifa Day is celebrated in Israel every year. Haifa Deputy Mayor Hedva Almog said that the municipality is planning big centenary celebrations to commemorate the event in 2018, calling upon India to join hands in making it a

success. Charge de Affaires at the Indian mission in Tel Aviv, Vani Rao, reacted positively to the request extending support in organising the Centenary celebrations. A two-member Indian Army delegation led by Col. M.S. Jodha, grandson of Haifa martyr Captain Aman Singh Bahadur, had especially come to Haifa in Israel, to attend the ceremony.

While remaining unknown in their own country, some Indian soldiers will become household names in Haifa in northern Israel after figuring in the history textbooks taught at schools for their contribution in liberating this city in 1918. The municipality of Haifa has gone ahead with its decision to immortalise the sacrifices made by Indian soldiers, many of whom are buried in the cemetery here, by including the stories of their valiant efforts in liberating the coastal city during the First World War in the school curricula as part of the history textbooks.

"The move is a part of Haifa municipality's efforts to preserve the city's history and heritage," said Hedva Almog, deputy Mayor of Haifa. Haifa Historical Society has done an extensive research on the role of the Indian army in the region. As per their findings, a large number of Indian soldiers sacrificed their lives in this region during the First World War and nearly 900 are cremated or buried in cemeteries across Israel.

Residents of the Israeli city also celebrate Haifa Day the same day with a series of cultural programmes during the week.

Embassy of India, Tel Aviv, Israel, has brought out a book "Memorials of Indian Soldiers in Israel". The book has foreword by Navtej Sarna, Ambassador of India in Israel.

Jews from Europe started pouring into Israel from 1919 onwards, swelling the Jewish population of Israel and thus paved the way for the state of Israel subsequently in 1948.

Haifa Day Celebrations in India & Around the World

Indo Israel Friendship Forum along with several other organisations including Vishwa Adhyayan Kendra, Purva Sainik Sewa Parishad and Human Rights Defence International, has been celebrating Haifa Day since 2012 in many places in India and overseas. Haifa Day was celebrated at the synagogues in Thane near Mumbai and at Delhi in 2012 and 2013. More than 1000 persons paid their respect to the great Indian soldiers by offering flowers at Teen Murthy Haifa Chowk in Delhi on 23 Sept 2014. In Rajasthan Haifa Day was celebrated in 2014 in 159 schools and was attended by 48,348 students. The community hall in Jodhpur was packed to hear the saga of success of their heroes. Memorial services were also held in Jaipur Shahid Park. Overseas Haifa day has been celebrated in different ways that included a joint gathering of Indians and Jews at Hong Kong, Durban and Sydney. Ravi Kumar during his visit of Israel in 2013 explained the importance of Haifa day to Indian Jews at Ramla, Jerusalem, Tel Aviv and Haifa.

Indian Embassy in Israel has been celebrating Haifa Day every year on or around 23rd September in Haifa, Israel.

Haifa Day: Indian Soldiers entering the North Israeli city of Haifa on 23 Sept 1918

Centenary of Haifa Day in 2018

Year 2018 will mark the centenary of the capture of Haifa and the process of independence of modern state of Israel.

80,000 Jews from India migrated to Israel after Israel's Independence in 1949. They are very successful as engineers, professionals, agriculturists, businessmen, military generals etc. They are proud of their Indian heritage. They proudly say: "Israel is our Fatherland and India is our Motherland" and "Israel is in our blood but India is in our Heart."

Indian Jews in Israel, USA and around the world in cooperation with VAK, FINS, ICCS and Indo Israel Friendship Forum are planning to commemorate the Centenary of Haifa Day in a grand fitting manner.

Tribute to Major Thakur Dalpat Singh Shekhawat, the Hero of Haifa

The Jodhpur Lancers and the Mysore Lancers, which were Imperial Service Troops during World War-I fought as a part of the Allied forces during the Palestine campaign of the war. They played a key role in the liberation of Haifa. Major Thakur Dalpat Singh, MC, who led the Jodhpur

Lancers in the battle for Haifa, is known in the annals of history as the "Hero of Haifa" for his critical role in the battle.

Maj Dalpat Singh Shekhawat was born and brought up in Jodhpur. His father, Col Hari Singh Shekhawat was a famous polo player. Under his guidance, Dalpat Singh grew and became an Army officer. He received his `King Commission' in 1912. During the First World War, Haifa (now in Israel), a stronghold of the Britishers was captured by the Turks. Maj Shekhawat was given the task of capturing back Haifa from the enemies. By showing his military skill, tactics and leadership in battle, he succeeded in his mission and won Haifa. However, he became a martyr while completing his task. Haifa victory was a great achievement of Maj Dalpat Singh and the British Government honoured him with 'Military Cross' in the battle field.

"His death is a loss not only to all Jodhpuris, but to India and the whole of the `British Empire', lamented Col Harvey, a British Army officer. The British Government eulogised his heroic deed and adored him as Hero of Haifa.

The Government of Marwar built `Dalpat Memorial Hall' in the premises of Pratap School in his memory. Maharaja Shri Umed Singhji got prepared his silver replica which is now a piece of glory for 61 Cavalary at Jaipur.

Maj Dalpat Singh's valour has been depicted in the literature of Rajasthan. A great poet of Marwar, Mr Kishore Dan Baharat has written many poems in his memory named `Veer Vilas' and 'Dalpat Raso' in Rajasthani language. The supreme sacrifice of Maj Dalpat Singh was appreciated by the British Government. It got made his statue with two other First World War heroes' statues by an architect of London, Leonard Jennings in 1922. These statues were placed side by side on a monolith pillar in New Delhi at a place called Teen Murty Chowk. The 83rd death anniversary of late Maj Dalpat Singh Shekhawat was celebrated at his native place, Jodhpur.

Captain Anop Singh and 2 Lt Sagat Singh were also awarded the Military Cross (MC) and Captain Bahadur Aman Singh Jodha and Dafadar Jor Singh were awarded the Indian Order of Merit (IOM) as recognition for their bravery in this battle.

Lt General Sir Pratap Singh had accompanied his Jodhpur Lancers on their 70 mile ride to Nazareth. He was 73 years of age then. The action of the Indian troops has been vividly recorded in the Official History of the War- Military operation Egypt and Palestine (volume 2): "Machine gun bullets over and over again failed to stop the galloping horses even though many of them succumbed afterwards to their injuries". This remains the only known incident in military history when a fortified town was captured by cavalry on the gallop.

Contd.....**Great Hero of India**

to whom any threat whatsoever was completely unacceptable and any pain inflicted dealt with in the severest manner. Jassa Singh realized that for such action (or initiative) to be effective it was necessary to be vitally strong. In today's world this translates into a complete focus on economic and military might with more than adequate deterrence (deep offensive capability for example), astute diplomacy for a manageable neighborhood and the realization that we cannot really be strong if we are divided and have hundreds of millions of poor people.

Jassa Singh died in 1783. As a rare gesture for his services to the community, he was cremated within the precincts of Harimandir Sahib (Golden temple) - near Burj Baba Atal Sahib, where his samadhi exists to this day. But whilst the shrine dedicated to him lies almost forgotten, his legacy remains, inspiring warriors to fight for freedom, justice, equality and legitimate sovereignty. His soul lives on in all acts of indomitable courage performed and yet to be performed by Indians.

[Sumant Dhamija is the author of 'Jassa Singh Ahluwalia (1718-1783)

Forgotten hero of Punjab' . He lives at B-28 Pushpanjali Farms, Bijwasan, New Delhi-110061].

महाराजा हेमचन्द्र विक्रमादित्य-जिनको इतिहास ने भुला दिया

- विनोद बंसल, नई दिल्ली

सम्राट हेमचन्द्र विक्रमादित्य, भारतीय इतिहास के उन चुनिन्दा लोगों में से हैं जिन्होंने इतिहास की धारा मोड़कर रख दी। वे पृथ्वीराज चौहान (1179-1192) के बाद इस्लामी शासनकाल के मध्य दिल्ली के सम्भवत: एकमात्र हिन्दू सम्राट हुए जो विद्युत की भांति चमके और दैदीप्यमान हुए। उन्होंने अलवर (राजस्थान) के बिल्कुल साधारण से घर में जन्म लेकर एक व्यापारी, माप-तौल अधिकारी, 'दरोगा-ए-डाल चौकी', 'वजीर' (प्रधानमंत्री)और सेनापति होते हुए दिल्ली के तख्त पर राज किया और अपने अपार पराक्रम एवं 22 युद्धों में विजयी रहकर 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की। यह वह समय था जब मुगल एवं अफगान- दोनों ही दिल्ली पर राज्य के लिए संघर्षरत थे। यद्यपि हेमचन्द्र अधिक समय तक शासन न कर सके, तथापि इसे भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना अवश्य कहा जायेगा। हेमचन्द की तूफानी विजयों के कारण कई इतिहासकारों ने उनको 'मध्यकालीन भारत का नेपोलियन' कहा है।

जन्म तथा प्रारम्भिक जीवन -

हेमचन्द्र, राय जयपाल के पौत्र और राय पूरणदास (लाला पूरणमल) के पुत्र थे। इनका जन्म आश्विन शुक्ल विजयादशमी, मंगलवार, कलियुगाब्द 4603, वि.सं. 1556, 02 अक्टूबर, 1501 ई. को अलवर (राजस्थान) जिले के मछेरी नामक गांव में हुआ था। इनके पिता पहले पौरोहित्य कार्य करते थे, किन्तु बाद में मुगलों के द्वारा पुरोहितों को परेशान करने के कारण कुतुबपुर, रेवाड़ी में आकर नमक का व्यवसाय करने लगे।

हेमचन्द्र की शिक्षा रेवाड़ी में आरम्भ हुई। उन्होंने संस्कृत, हिन्दी, फारसी, अरबी तथा गणित के अतिरिक्त घुड़सवारी में भी महारत हासिल की। साथ ही पिता के नये व्यवसाय में अपना योगदान देना शुरु कर दिया। अल्पायु से ही हेमचन्द्र, शेरशाह सूरी (1540-1545) के लश्कर को अनाज एवं बन्दूक चलाने में प्रयोग होने वाले प्रमुख तत्व पोटेशियम नाइट्रेट अर्थात शोरा उपलब्ध कराने के व्यवसाय में पिताजी के साथ हो लिए थे। इसी बारुद के प्रयोग के बल पर शेरशाह सूरी ने हुमायूं (1531-1540 एवं 1555-1556) को 17 मई, 1540 ई. को कन्नौज (बिलग्राम) के युद्ध में हराकर काबुल लौट जाने पर विवश कर दिया था। हेमचन्द्र ने उसी समय रेवाड़ी में धातु से विभिन्न तरह के हथियार बनाने के काम की नींव रखी, जो आज भी वहां पीतल, तांबा, इस्पात के बर्तन आदि बनाने के काम के रुप में जारी है।

दिनांक 22 मई, 1545 ई. को शेरशाह सूरी की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र जलाल खां ने इस्लामशाह सूरी के नाम से गद्दी सम्भाली और 1545 से 1554 तक दिल्ली पर शासन किया। पंजाब से बंगाल तक फैले हुए राज्य में अनेक अफगान- सरदारों ने मौके का लाभ उठाकर बगावत करनी चाही, लेकिन इस्लामशाह ने सबको पराजित कर दिया। इस्लामशाह ने एक प्रतिष्ठित व्यापारी की सिफारिश पर हेमचन्द्र को दिल्ली का बाजार-अधीक्षक बनाया और बाद में उन्हें खाद्य एवं आपूर्ति विभाग का अधीक्षक तथा 'दरोगा-ए-डाक चौकी' के महत्वपूर्ण पद पर आसीन कर दिया। सैन्य गतिविधियों, प्रशासन और जनसामान्य के बीच एक अविच्छिन्न सम्पर्क-सेतु बनाकर वह आम नागरिक से लेकर सुल्तान तक ही प्रशंसा के पात्र बन गये। अनेक अफगान-सरदारों की अनिच्छा के बावजूद इस्लामशाह ने हेमचन्द्र को छ: हजार सवारों की मुख्तियारी दी और 'अमीर' का खिताब दिया।

दिनांक 22 नवम्बर, 1554 को ग्वालियर में अपनी मृत्य के पूर्व इस्लामशाह ने पंजाब से हेमचन्द्र को बुलाकर उनको दिल्ली की सैनिक और प्रशासनिक व्यवस्था सौंप दी। इस्लामशाह की मृत्यु के बाद उसका बारह वर्षीय पुत्र फिरोजशाह सूरी गद्दी पर बैठा, किन्तु वह कुछ ही महीनें शासन कर सका। 1554 में ही उसे शेरशाह के भतीजे मुहम्मद मुबारिज खान ने मौत के घाट उतार दिया और स्वयं आदिलशाह सूरी के नाम से 1554 से 1555 तक शासन किया। आदिलशाह एक घोर विलासी और लम्पट शासक था और शासन की बिल्कुल भी परवाह नहीं करता था। फलस्वरूप अनेक अफगान-अधिकारियों ने उसके विरुद्ध बगावत शुरु कर दी। विद्रोह को दबाने और राजस्व वसूली के लिए आदिलशाह ने हेमचन्द्र को ग्वालियर के किले मे न केवल अपना 'वजीर' (प्रधानमंत्री) बनाया, वरन अफगान सेना का सेनापति भी नियुक्त कर दिया। इस प्रकार हेमचन्द्र पर शासन का भार डालकर आदिलशाह ने चुनार (मिर्जापुर के पास) की राह पकड़ी। इस प्रकार सम्पूर्ण अफगान शासन हेमचन्द्र के हाथ में आ गया। अवसर पाकर हेमचन्द्र ने हिन्दू राज्य का स्वप्न देखा।

हुमायूं, जो पहले 1540 ई. में शेरशाह सूरी द्वारा हराकर काबुल खदेड़ दिया गया था, ने दुबारा हमला करके शेरशाह सूरी के भाई सिकन्दर सूरी को पंजाब में हराकर जुलाई, 1555 ई. में दिल्ली पर अधिकार कर लिया। उस समय अफगान- सरदार आपस में ही संघर्षरत थे। उत्तर भारत, मध्य भारत, बिहार और बंगाल तक उन्होंने अपने झण्डे बुलंद कर दिए। आदिलशाह के सबसे बड़े शत्रु इब्राहीम खान ने कालपी में सिर उठा लिया था। तब आदिलशाह ने हेमचंद्र को बड़ी सेना और पाँच सौ हाथी तथा तोपखाना देकर आगरा और दिल्ली के लिये भेजा। जब हेमचंद्र काल्पी पहुँचे, तब उन्होंने निश्चय कर लिया कि पहले इब्राहीम को समाप्त किया जाए। इसलिए उन्होंने शीघ्रता से उसकी ओर कूच किया। एक बहुत बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें हेमचंद्र विजयी हुए और इब्राहीम भागकर बयाना चला गया। हेमचंद्र ने उनका पीछा किया और बयाना को घेर लिया। यह घेरा तीन महीने तक चलता गया। तभी हेमचंद्र को आदिलशाह का आदेश प्राप्त हुआ कि बंगाल के सूबेदार मुहम्मद खान गोरिया (1545-1555) ने विद्रोह कर दिया है। तब हेमचंद्र ने बंगाल की ओर कूच किया और आगरा से 15 कोस की दूरी पर छप्परघाट नामक गांव के निकट मुहम्मद खान गोरिया से लड़े जिसमें मुहम्मद मारा गया। इसके बाद हेमचंद्र ने बंगाल में अपने सूबेदार शाहबाद

खान को नियुक्त किया। इसके 6 माह बाद दिल्ली में हुमायूं की मौत (27 जनवरी 1556) का समाचार सुनकर समझ लिया कि अब हिंदू राज्य के स्वप्न को साकार किया जा सकता है।

हेमचंद्र ने मुगल साम्राज्य को उखाड़ फैंकने के लिये दिल्ली की ओर कूंच किया और ग्वालियर से निकलकर बंगाल, बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश व अगरा की कई रियासतों को जीतते हुए, 22 युद्ध लड़े।

दिल्ली पर विजय व राज्यारोहण :

6 अक्टूबर 1556 को हेमचंद्र ने अपने सभी सेना अधिकारियों, अनेक पठान योद्धाओं, 40 हजार घुड़सवारों, 51 बडी तोपों और 500 छोटी तोपों के साथ दिल्ली के कुतुब मीनार से कुछ मील दूर तुगलकाबाद में अपना डेरा जमाया। दिल्ली के सूबेदार तारदी बेग खान ने उनका मुकाबला करने का असफल प्रयास किया किंतु उसे अपने लगभग 3 हजार मुगल सैनिकों, अपार धन संपत्ति, 1 हजार अरबी घोड़े तथा लगभग 15 सौ हाथियों से हाथ धोना पड़ा और स्वयं जान बचाकर भाग निकला। अगले ही दिन दिनांकित अक्टूबर 1556 को दिल्ली के पुराने किले में अफगान और हिंदू सेना नायकों के सानिद्धय में पूर्ण हिंदू धार्मिक विधि से उनका राज्याभिषेक हुआ और उन्हें विक्रमादित्य की उपाधि से विभूषित किया गया। 364 वर्षों के मुगल शासन में पहली बार किसी हिंदू शासक ने गद्दी संभाली थी।

हुमायूं की मृत्यु के पश्चात् उसके 14 वर्षीय पुत्र अकबर (1556-1605) को उसके कई सेनापतियों व संरक्षक बैरम खान ने हेमचंद्र से युद्ध करने के लिए अकबर को प्रेरित किया। 5 नवंबर 1556 को पानीपत में हुए इस युद्ध में अकबर और बैरम खान ने स्वयं युद्ध में भाग नहीं लिया और युद्ध क्षेत्र से चंद किलोमीटर दूर सौंधापुर गांव स्थित शिविर में ही रहे जबकि हेमचंद्र ने स्वयं अपनी सेना का नेतृत्व किया। एक ओर हेमचंद्र की सेना में कुछेक लाख सैनिक 1500 सुरक्षा कवच धारी हाथी योद्धा व धनुर्धर थे तो वहीं दूसरी ओर मुगल सेना में कुल 20 हजार अश्वारोही सैनिक ही थे। अकबर की सैन्य टुकड़ी की कूट नीतिक चालों ने एक बार तो हेमचंद्र के सैनिकों को तोपें छोड़ मैदान से भागने पर विवश कर दिया किंतु जब हेमचंद्र स्वयं हाथियों के साथ आगे बढ़े तो मुगल सेना का बायां पक्ष हिल उठा था। 'हवाई' नामक एक विशाल हाथी पर सवार होकर सैन्य संचालन कर रहे हेमचंद्र ने ताबड़तोड़ तीरों की जो बौछार की उससे मुगल सेना भयभीत हो चुकी थी। इसी बीच वे भी शत्रुओं के तीरों से घायल तो थे किंतु सहसा एक तीर उनकी आंखों को चीरता हुआ मस्तिष्क में घुस गया और वे मूर्छित होकर हौदे में गिर पड़े। हेमचंद्र के गिरने की सूचना मात्र से उनके सैनिक बुरी तरह भयभीत होकर युद्ध क्षेत्र से भाग खड़े हुए और अकबर को बैठे बिठाए निर्णायक सफलता प्राप्त हो गई। बाद में उनके मृत प्रायः शरीर को शाह कुली खान अनेक सैनिकों के साथ अकबर के समक्ष ले जाया गया जहाँ स्वयं बैरम खान ने अकबर के ही समक्ष उनके टुकड़े- टुकड़े कर सिर को काबुल में और धड़ को दिल्ली में बेरहमी से दरवाजे पर लटकाया गया। इतना ही नहीं दोबारा कोई विद्रोह न कर सके इसलिए अकबर ने हेमचंद्र के सैनिकों और शुभचिंतकों के कटे सिरों का बुर्ज बनाया गया, उनकी संपत्ति पर कब्जा कर उनके पिता राय पूरणदास के भी टुकड़े- टुकड़े कर डाले और उनका कुल नष्ट करने के लिए अलवर, रेवाड़ी, नारनौल आदि क्षेत्रों में बसे हुए उनके सहयोगियों को चुन-चुनकर बंदी बनाया गया। अनेक इतिहास विदों, समाजसेवियों ने हेमचंद्र विक्रमादित्य की महान राष्ट्र भक्ति, कुशल सैन्य संचालन का गुणगान करते हुए लिखा है कि चाहे उन्होंने मात्र एक महींने ही राज किया हो किंतु जितना प्रभावशाली वक्तित्व उनका था वह भारतीय इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है। संयोगवश उनकी और उनके हाथी की आँख में तीर लग जाने से अकबर की लौट्री लग गई।

मध्यकालीन और आधुनिक इतिहासकारों ने हेमचंद्र विक्रमादित्य के प्रति न्याय नहीं किया तथा युद्ध क्षेत्र की एक दुर्घटना ने उनकी विजय को पराजय में बदल दिया अन्यथा संभवतः युद्ध का परिणाम दिल्ली में मुगलिया सल्तनत स्थापित करने की बजाय संपूर्ण भारत में हिंदू साम्राज्य की आधारशिला के रूप में स्थापित होता। आओ! भारत के इस गौरवशाली वीर सपूत को उनकी जयंती पर श्रद्धा सुमन अर्पित कर याद करें।●

कुछ देश दी ख़ातिर करिआ कर

-उस्ताद कवि बरकत राम 'युमन' बटालवी

तन पालण, माया जोड़ण लई दिन रात जु टुट टुट मरना ऐं।
इक दमड़ी दे लालच बदले अग विच नाँ डिगणों डरना एं।
सिर खुकरण वेहल नहीं तेनूं खुद ग़रज़ी दिआँ सहेड़ाँ चों।
इक पल वी निकल नहीं सदका दुनिआ दारी दिआँ गेड़ाँ चों।
पर मैं पुछनाँ इस घेरे चों कदे बाहर वी नज़र दुड़ाई ऊ?
कदे फ़रज़ पछाता ई अपणाँ कदे दिल विच झाती पाई ऊ?
तेनूं भुख्खा वेख कदे कोई जे रोटी डंग खुआल दये।
दो पैसे दे दये खरचण नूं पानी दा घुट्ट पिआल दये।
ऐनें विच ही उस दानी दे गुण गौंदा मूल ना थकणाँ ऐं।
पर देश दिआँ उपकाराँ वल झाती वी मार नाँ सकणाँ ऐ।
जिस देश दी मिट्टी चों बणिंओ जिस देश दा खांदा पींदा ऐं।
जिस देश दी खुल्ली वा अंदर पिआ सुख दा जीवन जींदा ऐं।
जिस देश चों तेरे जीवन दी हर लोड़ हो रही पूरी ऐ।
उस देश दी सेवा करनी वी जीवन दा अंग ज़रूरी ऐ।
अपणें ही ढिड्ड दिआँ धोंदिआँ लई दिन रात न टुट टुट मरिआ कर।
कुछ देश दा हक़ वी हुंदा ऐ कुझ देश दी ख़ातिर करिआ कर।

इतिहास में गौरवपूर्ण योद्धा की स्मृति से अलंकृत, वीरता व शौर्य की मूर्ति, युवाओं, देशभक्तों के आदर्श, स्वदेश प्रेम, स्वधर्म-संस्कृति की रक्षा के अनुपम उदाहरण

'महाराणा प्रताप'

-**मनमोहन कुमार आर्य**, देहरादून।

महाराणा प्रताप एक दिव्य, ओजस्वी, तेजस्वी, साहसी, निर्भीक, देश-धर्म-संस्कृति प्रेमी, चरित्र के धनी व अद्वितीय बलवान पुरुष थे। उनका देश, धर्म व संस्कृति के प्रति प्रेम जगजाहिर है। मातृभूमि के प्रति इस प्रेम के लिए ही उन्होंने अपने प्राणों व कुटुम्बियों के हितों का मोह भी त्याग दिया था। वह वेदों की सूक्ति ''माता भूमि पुत्रे अहं पृथिव्या:'' अर्थात् स्वदेश-भूमि मेरी माता है और मैं इसका योग्यतम् पुत्र हूं, के मूर्तरूप थे। भारत वर्ष ही नहीं संसार के इतिहास में उनका नाम सदैव अमर रहेगा। वह राष्ट्रभक्ति व राष्ट्रीय स्वाभिमा के प्रतीक हैं। मातृभूमि, भारतमाता व स्वदेश भक्ति की भावनाओं से वह पूरित थे तथा मातृभूमि की स्वतन्त्रता व अखण्डता के लिए वह आत्मोत्कर्ष की भावना से भरे हुए आशावादी व जीवन्त पुरुष थे। उन्होंने स्वदेश भक्ति व स्वतन्त्रता के लिए अभाव, कष्टों व दु:खों का जीवन व्यतीत करना सहर्ष स्वीकार किया परन्तु विधर्मी, अभिमानी, दूसरों की स्वतन्त्रता का घात करने वाले, उन्हें गुलाम बनाने की मनोवृति पालने वाले, शोषण व अन्याय निर्दोष, निरीह, निर्बल प्रजा के धर्म व अस्मिता का हरण करने वाले राजाओं, उनके सिपहसलारों व शत्रुओं के सामने झुकना स्वीकार नहीं किया। वह वैदिक व राजपूती आन, बान व शान के पुरस्कर्ता, रक्षक व उन्नायक थे। महाराणा प्रताप देशभक्ति, देशसेवा, देशप्रेम, देश के लिए जीना व देश के लिए ही मरना व मिटना, **'तेरा वैभव अमर रहे मां, हम दिन चार रहें न रहें'** की भावना के उज्जवल विचारों के सम्वाहक थे। यदि देश की बाल व युवा पीढ़ी उनके जीवन पर शुद्ध व पवित्र मन से विचार करें तो वह अपने जीवन को, जीवन के भटकाव वाली आधुनिक पश्चिमी जीवन शैली को त्याग कर जीवनोत्थान व जीवन के सत्य लक्ष्य का मार्ग प्रदर्शित करने वाली जीवन शैली, वैदिक जीवन शैली, को अपनाकर स्वजीवन के उत्सर्ग व उसे सफलता की ओर अग्रसर कर सकते हैं। उस वीर, महापुरुष, राष्ट्रीय आदर्श, देश के गौरव पुरुष को शत शत: प्रणाम।

राष्ट्रनायक महाराणा प्रताप का जन्म 31 मई, सन् 1540 को राजस्थान के पालीशहर के महान योद्धा महाराणा उदय सिंह के यहां हुआ था। राजपूत राजाओं में आप श्रेष्ठ राजा माने जाते थे। आपके दो छोटे भाई जगमाल और शक्तिसिंह थे। भाईयों ने आपके सामने कई बार समस्यायें खड़ी कीं परन्तु आपने सदा उनको अभयदान दिया। मातृभूमि व उसके लिए कुछ भी करने का जज्बा यहां तक की मृत्यु का आलिंगन करने की भावना भी आपमें गहराई तक भरी हुई थी। वीरता, शौर्य व साहस में आप के समान राजपूताना में दूसरा योद्धा शायद नहीं हुआ। चित्तौड़गढ़, मांडलगढ़ और कुंभल गढ़ के दुर्ग आपके पिता के आधिपत्य में थे। अकबर कूटनीति का पण्डित कहा जा सकता है। वह अपने पिता व दादा बाबर के ही समान था परन्तु उसका बाह्य रूप सर्वधर्म समभाव का था। उसने राजपूतों में फूट डाली। राजपूतों का एक वर्ग उसके साथ हो लिया। इस वर्ग ने अपना हानि-लाभ का अनुमान लगाया। उन्हें लगा कि वह यदि अकबर को अपना अधिनायक नहीं मानेगें तो उनका व उनकी प्रजा का अस्तित्व व भविष्य बचा पाना असम्भव है। राजा मान सिहं की बुआ जोधा बाई का अकबर से विवाह अपने अस्तित्व व प्रजा की रक्षा के लिए ही किया गया था। यही नहीं, मानसिंह व उसके साथी अनेक राजपूत भी अकबर की सेना में सम्मिलित हुए और अकबर ने उनका उपयोग महाराणा प्रताप के विरुद्ध किया। महाराणा प्रताप के लिए अकबर की सेना से युद्ध करना इस कारण सदैव दु:ख से पूर्ण रहा कि उसे अकबर के विरुद्ध लड़े गये अपने सभी युद्ध अकबर की सेना के अपने राजपूत बन्धुओं के विरुद्ध ही लड़ने पड़े जहां दोनों तरफ से बड़ी संख्या में राजपूत मारे गये। अपनी मातृभूमि, स्वदेश व स्वसंस्कृति की रक्षा ही उनका मुख्य प्रयोजन था जो उनका जन्मसिद्ध अधिकार था। महाराणा प्रताप के पिता उदयसिंह को भी अपने जीवन काल में अकबर के विरुद्ध लड़ाई लड़नी पड़ी थी। राजपूतों के बड़ी संख्या में अकबर की तलवार के सामने घुटने टेक देने के कारण व राजपूतों में परस्पर एकता व बन्धुता के भाव की कमी के कारण राजपूतों की शक्ति कमजोर हुई वहीं राजपूतों के द्वारा अकबर को सहयोग देने से उसकी शक्ति में भारी वृद्धि हुई। महाराणा उदयसिंह तथा महाराणा प्रताप की सेना की संख्या अकबर की सेना से एक चौथाई से भी कम थी, हथियार भी अच्छे नहीं थे, तोपें आदि तो थी हीं नहीं, अत: दोनों सेनाओं का आपस में कोई सन्तुलन नहीं था। इस पर भी महाराणा प्रताप के सैनिकों के हौंसले बुलन्द थे। वह मातृ भूमि की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर देने की भावना से ओतप्रोत थे। यही जज्बा अकबर के मार्ग में बाधा पहुंचाता था।

पहली बार अकबर ने चित्तौड़ गढ़ को जीता तो उसका कारण महाराणा प्रताप के पिता महाराणा उदय सिंह का अकबर को अधिनायक व उनका आधिपत्य स्वीकार न करना था। 5 से 6 महीने की अवधि तक युद्ध हुआ, परिणाम वही हुआ जो एक शक्तिशाली व एक निर्बल सेना के बीच होने वाले युद्ध का होता है। महाराणा उदय सिंह की सैन्य शक्ति अकबर की सेना से बहुत ही कम थी। इस युद्ध में इतना अच्छा रहा कि उदयसिंह अपने परिवार के सदस्यों सहित युद्ध के मैदान से सुरक्षित भागने में स्फल हो गये जिससे अगले युद्ध की भूमिका तैयार हो सकी। कालान्तर अप्रैल सन् 1576 में अकबर की सेना ने उनके पुत्र सलीम के नेतृत्व में तथा मानसिंह और महाराणा प्रताप के छोटे भाई शक्ति सिंह के सहयोग से महाराणा प्रताप के मण्डल गढ़ के किले पर आक्रमण किया। यह युद्ध हल्दी घाटी के युद्ध के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है। इसमें महाराणा प्रताप व उनके सैनिक वीरता से लड़े। उनके पास तोपे नहीं

थी। संख्या भी मुगल सेना से बहुत कम थी। इन तोपों ने महाराणा प्रताप की सेना को भारी हानि पहुंचाई। युद्ध में उनकी लगभग 14,000 सेना ने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया। महाराणा प्रताप के घायल होने पर उनके मामा ने उन्हें युद्ध भूमि छोड़ने को विवश किया। जीवन में उन्हें सबसे प्रिय उनका चेतक उनके जीवन की रक्षा करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुआ। अकबर की सेना का नेतृत्व कर रहे उनके छोटे भाई शक्ति सिंह को भातृ प्रेम व जाति प्रेम अचानक उमड़ पड़ा। उसने अकबर का साथ छोड़ कर भाई की जान बचाई। उन्हें बन्दी बना लिया गया। इस युद्ध में मण्डल गढ़ का किला महाराणा प्रताप के हाथ से निकल गया।

परिस्थितियां ऐसी बनी की महाराणा प्रताप को भामाशाह जैसे सर्वस्व दानी मिल गये जिन्होंने अपनी अथाह दौलत महाराणा प्रताप के चरणों में समर्पित कर दी। भाई शक्ति सिंह ने भी इन दिनों अपनी सेना का गठन कर लिया था, वह भी महाराणा प्रताप को समर्पित कर दी। अकबर का एक कादार राजपूत सैनिक पृथ्वीराज चौहान भी आकर महाराणा प्रताप से मिल गया और उन्हें अकबर का विरोध करने की प्रार्थना की। पहली सफलता महाराणा प्रताप को कुमलमेर के किले को प्राप्त करके, प्राप्त हुई। युद्ध का दूसरा केन्द्र शक्तिसिंह का 'किम सहारा' किला था जहां मानसिंह ने महावत खां के नेतृत्व में 10,000 की फौज भेजकर आक्रमण किया। इस युद्ध में महाराणा प्रताप ने अपने भाई शक्तिसिंह का साथ दिया। यहां मुगल सेना पराजित हो गई। महाराणा प्रताप ने कुम्भल-गढ़ के अपने किले को जो अकबर के कृपा पात्रों के अधीन था, आक्रमण कर उसे भी अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार महाराणा प्रताप विजय अभियान की ओर अग्रसर थे। अकबर और महाराणा प्रताप के बीच बार-बार के युद्धों का परिणाम यह हुआ कि अकबर की सेना के राजपूतों की सहानुभूति महाराणा प्रताप के प्रति हो गई। इसका कारण महाराणा प्रताप की देशभक्ति व राजपूतों की आन-बान व शान की रक्षा करना ही था। इससे अकबर को राजपूतों की ओर से बगावत की सम्भावना दिखाई देने लगी। मानसिंह से विचार-विमर्श करने पर भी उसने वास्तविक स्थिति अकबर के सम्मुख रखी जिससे अकबर को विवश होकर अपनी नीति को बदलना पड़ा। महाराणा प्रताप को वह अपनी सल्तनत का लोहा न मनवा सका, महाराणा प्रताप को वह अपने अधीन न कर सका, इससे वह दुखी था। इस विषम परिस्थिति में एक समझदार व चतुर राजनीतिज्ञ की भांति उसने स्थिति को अपने अनुकूल करने के लिए अपने पुत्र सलीम का राजा मानसिंह की बहिन से विवाह करने की घोषणा की। यह घोषणा भी की कि महाराणा प्रताप से उनकी कोई शत्रुता नहीं है। जब तक वह जीवित हैं उन पर कोई हमला नहीं किया जाएगा। यह भी बताया जाता है कि अकबर ने सभी राजपूत राजाओं से हाथ जोड़कर अपनी गलती मानी।

महाराणा प्रताप ने जो युद्ध लड़े उसमें उनके अनेक साथी व परिवारजन मृत्यु को प्राप्त होते रहे। उनकी अपनी मृत्यु का समय निकट आ जाने पर वह चिन्तित अवस्था में थे। इसका कारण था कि उनका अपना पुत्र अमरसिंह स्वदेश की रक्षा के योग्य नही था। उनके छोटे भाई शक्तिसिंह ने उन्हें आश्वस्त किया कि वह उनके स्वप्न को साकार करेगा और उसके लिए स्वयं को मातृभूमि की सेवा में अर्पित रखेगा। इस आश्वासन के मिल जाने पर महाराणा प्रताप ने अपने बन्धुओं की उपस्थिति में 29 जनवरी, 1597 ई. को अपने प्राण त्यागे। उनका जीवन व उनके वीरता, साहस व शौर्य पूर्ण कार्य भावी पीढ़ी की धरोहर बन गये। उन्होंने देश भक्ति की जो मिसाल कायम की है, उसके लिए उनका नाम भारत के इतिहास में सदैव अमर रहेगा और लोग उनसे प्रेरणा लेते रहेगें।

मातृभूमि से प्रेम व उसकी रक्षा के लिए स्वयं को समर्पित रखना महाराणा प्रताप के जीवन का सन्देश था। यदि देश की रक्षा के लिए अपने प्राण भी देने पड़े तो उसके लिए सदैव तत्पर रहना, अपनी सत्य परम्पराओं का पालन करना उनका व्रत वा संकल्प था। विदेशी राजा चाहे कितना भी बलवान, शक्तिशाली, नीति-निपुण, पराक्रमी, धनी व सामर्थ्यवान ही क्यों न हो, उसकी परवाह न कर अपनी शक्ति को बढ़ाना और उसके आधार पर शत्रु को अधिक से अधिक क्षति पहुंचाना और युद्ध करते हुए अपने प्राणों को स्वदेश की पवित्र वेदी पर न्योछावर करना उनका आदर्श था। देश के गौरव, स्वदेश भक्ति, स्वधर्म व प्राचीन वैदिक परम्पराओं की रक्षा के अदम्य उदाहरण व प्रेरणा स्रोत, देश के लिए अपना सब कुछ त्याग देने की भावना व जज्बा रखने वाले नर पुंगव वीरता, शौर्य व साहस की अनोखी मिसाल महाराणा प्रताप जी को हमारी श्रद्धांजलि।●

भाई गुरदास जी के कबित्त सवैयों में श्री गुरु नानकदेव जी

सोरठा

अबिगति अलख अभेव अगम अपार अनंत गुर ।
सतिगुर नानक देव पारब्रहम पूरन ब्रहम ।।1।।2।।

दोहरा

अगम अपार अनंत गुर अबिगत अलख अभेव ।
पारब्रहम पूरन ब्रहम सतिगुर नानक देव ।।2।।2।।

छंद

सतिगुर नानक देव देव देवी सभ धिआवहि ।
नाद बाद बिसमाद राग रागनि गुन गावहि ।
सुंन समाधि अगाधि साधा संगति सपरंपर ।
अबिगति अलख अभेव अगम अगमिति अपरंपर।।3।।2।।

(कबित्त संख्या-2)

नवाब कपूर सिंह

- **निहंग गुरविन्दर सिंह** (विजयदीप सिंह)

नवाब कपूर सिंह जी का जन्म 1697 ईस्वीं में ग्राम कालोके जिला शेखुपुरा (वर्तमान पाकिस्तानी पंजाब) में हुआ था। इनके पिताजी का नाम चौधरी दिलीप सिंह था। चौधरी दिलीप सिंह गांव के पट्टीदार और किसान थे। नवाब कपूर सिंह जी ने 1721 में भाई मनी सिंह जी के नेतृत्व में पांच प्यारों के द्वारा अमृत धारण किया। इनके समय की राजनीति सिखों के लिए अत्यंत कष्टकारी थी। बंदा सिंह बहादुर धर्म के ऊपर शहीद हो चुके थे। जकरिया खान लाहौर का नवाब बन चुका था। जिसके गुर्गे शिकारी कुत्तों की तरह सिखों का शिकार किया करते थे और उनके सिर का मूल्य लगता था। इस कारण से सिखों को कई बार अपना देश छोड़कर सुदूर राजस्थान के थार मरूस्थल में शरण लेनी पड़ती थी या शिवालिक के पर्वतांचल में अपना घर बनाना पड़ता था। किन्तु समय समय पर सिख श्री अमृतसर साहिब के दर्शन के लिए आते रहे एवं उनकी मुठभेड मुगलों से होती रहती। एक मुठभेड में सबद खान की सेना भारी पराजय दी। काफी समय इन्होंने मुगलों का प्रतिरोध करना जारी रखा। जिससे तंग आकर जकरिया खान ने सिखों को दीपालपुर की नवाबी पेश की। इस विषय पर सरबत खालसा में विचार हुआ एवं सबने कपूर सिंह जी को नवाबी स्वीकार करने को कहा। इन्होंने नवाबी का सिरोपा पंज प्यारों के चरणों से लगाकर धारण किया। अब जबकि इन्हें शासन मिला, उस शांतिकाल का प्रयोग इन्होंने धर्म प्रचार एवं सैनिक संगठन करने हेतु किया। इन्होंने सर्वप्रथम दल खालसा को बुड्ढा दल एवं तरणा दल में बांटा। बाद में 5 मिसलें बनाईं। जिन पांच मिसलों में इन्होंने सभी वर्गों को समानता का स्तर प्रदान किया। ये मिसलें थी-बाबा दीप सिंह शहीद की मिसल, करम सिंह-धरम सिंह की मिसल, काहन सिंह-विनोद सिंह मिसल, दसौंदा सिंह मिसल एवं बीरू सिंह रंगरेटा की मिसल। बाद में इन्होंने 12 मिसलों का भी गठन किया।

नवाब कपूर सिंह के सारे खालसा पंथ के जत्थेदार होने के अतिरिक्त इनकी एक व्यक्तिगत मिसल भी थी। इसका पहले नाम फैजलपुरिया था क्योंकि उसका मुख्यालय फैजलपुर में था। बाद में इन्होंने फैजलपुर का नाम बदलकर सिंहपुर किया तब से इनकी मिसल का नाम सिंहपुरिया हुआ। सिंहपुरिया मिसल का क्षेत्र वर्तमान जालंधर, होशियारपुर, रोपड़ आदि क्षेत्रों में फैला हुआ था। इनकी इस सुदृढ़ स्थिति को मुगल शासक सहन नहीं कर सके। अत: जकरिया खान के दीवान लखपत राय ने इनकी जगीर को अपने कब्जे में ले लिया। इस दौरान यह सतलुज के दक्षिण में मालवा क्षेत्र में पहुंचे। वहां फूलकिया मिसल के बाबा आला सिंह जी के साथ मिलकर इन्होंने सुनाम फतेह किया। तत्पश्चात इन्होंने सरहिन्द पर आक्रमण किया एवं विजय प्राप्त की। इसके बाद यह अमृतसर साहिब वापस आए। इनके साथ बुड्ढा दल की सेना थी। इन पर दीवान लखपत राय ने आक्रमण किया। इनको पीछे हटना पड़ा। लेकिन उसी समय तरणा दल इनकी साहयता पर आया। दोनों सेनाओं ने सम्मिलित होकर मुगल सेनाओं पर आक्रमण कर दिया। इस सम्मिलित सेना ने मुगल सेना को करारी हार दी। दीवान लखपत राय बामुश्किल अपनी जान बचा सका। उसका भतीजा दुनीचन्द और फौजदार जमाल खान और ततार खान इस युद्ध में मारे गए।

इसी प्रकार नवाब कपूर सिंह एक समय दिल्ली की ओर भी गए तब इन्होंने बहादुरगढ़, पटौदी, महरौली, फरीदाबाद आदि स्थानों के शासकों से कर (Tax) वसूल किया। जब ये फरूखाबाद और फिरोजाबाद की तरफ गए तो वहां के शासकों ने इनके खिलाफ जेहाद का नारा दिया। गाजी लोगों ने सिखों पर आक्रमण किया। यह पहला मौका था कि जब इनको इस विजय यात्रा में किसी ने चुनौती दी थी। गाजियों को यह चुनौती बहुत भारी पड़ी। सिंहों ने उन्हें करारी हार दी।

सन् 1739 की ग्रीष्म ऋतु में नादिरशाह जोकि फारसी आक्रमणकारी था दिल्ली और पंजाब को लूटकर अपने देश वापिस जा रहा था। उसके पास लूटमार का धन एवं देश की बहु-बेटियां बतौर गुलाम थी। जब वह अखनूर (जम्मू के निकट) पहुंचा तो रात के समय सिंहो ने उस पर आक्रमण किया। जब तक कि बन्दियों की रिहाई नहीं हुई एवं लूट का माल उससे वापस नहीं छीना गया सिंह उस पर निरन्तर आक्रमण करते रहे। इस युद्ध में सिंहों का भी काफी जानी नुकसान हुआ। नादिरशाह ने जकरिया खान (जोकि इस समय उसकी सेवा में आ चुका था) से पूछा, कि ये लोग कौन है, कहां रहते हैं, क्या खाते हैं, जो जकरिया खान ने बताया कि ये तो घोड़ों पर घूमते रहते है एवं बहुत थोड़े में गुजारा करते हैं और बड़े भयंकर योद्धा है। नादिरशाह का जवाब था कि यह एक दिन इस मुल्क पर कब्जा करके ही रहेंगे।

नादिरशाह के जाने के बाद मुगलों के दीवान लखपत राय ने सिखों को काहनुवाल जिला गुरदासपुर के वन में घात लगाकर घेर लिया। इस युद्ध में मुगलों ने सिखों का बहुत अधिक नुकसान किया। फिर भी सिख युद्ध करते रहे। इस युद्ध को छोटा घल्लूघारा कहा जाता है। जब सिख घेरे से बाहर आए तो उनके पास शस्त्र एवं भोजन की कमी हुई। तो इन्होंने यह योजना बनाई कि इस कमी की पूर्ति वह अपने आक्रमणकारियों से ही करेंगे। इसी कारण इन्होंने भागते हुए **'ढाई फट युद्ध कला'** का प्रदर्शन करते हुए घूमकर अपना पीछा कर रह फौज के ऊपर ही आक्रमण कर दिया एवं उनसे हथियार एवं रसद लूट ली।

जकरिया खान एक समय में सिखों को छल द्वारा पकड़ना चाहता था। उसने इस कार्य के लिए भाई मनिसिंह जी के साथ एक प्रकार का समझौता करने का यतन किया। भाई मनिसिंह जी इस चाल को समझ गए और उन्होंने सिंहों को सचेत किया। परिणाम स्वरूप जकरिया खान ने उन्हें मृत्यु या धर्मान्तरण के दो विकल्प दिए। भाई मनिसिंह अपने धर्म पर कायम रहते हुए बंद-बंद कटवाकर शहीद हुए। सिंहों में उनका प्रतिशोध लेने की भावना प्रबल थी। सिंहों को मालूम था कि जकरिया खान एक निश्चित समय पर अपने धार्मिक स्थान पर पूजा हेतु आता है। सिंहों ने उस

समय वहां पहुंचकर उसके किए की सजा देने का फैसला किया। सिंह तुर्की-मुगलिया भेष में उसी प्रकार नाद करते लाहौर की तरफ आए एवं एक द्वार पर प्रतीक्षा करने लगे। जकरिया खान कदाचित भय के कारण बाहर न आया। जब नवाब कपूर सिंह जी को इसका भान हुआ तो वह सीधा कोतवाली गए एवं कोतवाल के आसन पर बैठे और वहां से सरकारी खजाना उठाकर अपने साथ ले गए एवं कोतवाल को इस प्रकार बोले-कि अकाल पुरख का कोतवाल नवाब कपूर सिंह आया है, इसकी सूचना अपने अधिकारियों को दे देना। इस तरह सिंह लाहौर का छापा मारकर जंगलों में अपने ठिकाने पर जा पहुंचे।

जब मुगलों का सूरज ढ़लना शुरु हुआ तो पंजाब में अब्दाली रूपी कहर नमूदार हुआ। वह लोग इतने पाशिवक थे कि पंजाब में ये कहावत बन गई 'खादा पीता लाहेदा बाकि अहमद शाहेदा' ये अब्दाली लोग हिन्दु, मुस्लिम, सिख,जैन, जो भी था सभी को लूटते थे। स्त्रियों से दुर्व्यवहार करते थे। इन्हीं का एक सुबेदार जालंधर था जिसका नाम नासिरखान बलूच। इसने जालंधर के निकट करतारपुर सोढ़ियां के गुरुद्वारा 'थम्मजी साहिब' में गोहत्या की एवं गुरुद्वारे को अग्नि के हवाले कर दिया। वहां के मुख्य सेवादार बाबा वडभाग सिंह जी सोढ़ी हिमाचल के जंगलों की ओर चले गए। वहां उनकी भेंट जालंधर के पुराने सुबेदार अदीनबेग से हुई जोकि अराई (माली) जाति का भारतीय मुस्लिम था। उसने बाबाजी से अपने राज्य की पुन: प्राप्ति के लिए सिखों से सहायता की प्रार्थना की। जब इस विषय में विचार विमर्श हुआ कि क्या अदीनाबेग की सहायता करनी चाहिए या नहीं? कई लोगों ने अदीना बेग के मुस्लिम होने पर आपत्ति जताई। नवाब कपूर सिंह जी ने सहायता का पक्ष लिया एवं आध्यात्मिक गुरबाणी प्रमाण देके सबको संतुष्ट किया। युद्ध से पूर्व सिंहों ने अदीनाबेग की फौज की दस्तारों एवं टोपों पर गेहूं की बालियां लगाई। जिससे कि इन्हें सिंह लोग अपने पक्ष वाला मुस्लिम समझें और आक्रमण ना करें। युद्ध का काफी समय बीतने पर भी सिंहों का पक्ष इच्छित सफलता प्राप्त नहीं कर पा रहा था। कारण था शत्रु पक्ष की तोपें। नवाब कपूर सिंह जी ने विचार किया कि दो तोपों के बीच का स्थान काफी है सेना को बढ़ाने के लिए। सो उन्होंने जत्थों को इस रिक्त स्थान का प्रयोग करते हुए आगे बढ़ने को कहा। यह युक्ति सफल रही एवं युद्ध में सिंहों का पक्ष विजयी हुआ। दोषियों को यथायोचित दण्ड दिया गया।

नवाब कपूर सिंह जी को श्री गुरु गोबिन्द सिंह जी महाराज की महल (सुपत्नी) माता सुन्दरी जी (माता सुन्दर कौर) जी न अपना पालित पुत्र जस्सा सिंह आहलुवालिया की देखभाल का दायित्व सौंपा। दिल्ली में बड़ा होने के कारण जस्सा सिंह हिन्दी भाषी थे इस कारण उनके पंजाबीवासी मित्र कभी कभार उनसे उपहास करते थे। जिसकी शिकायत उन्होंने नवाब कपूर सिंह से की। नवाब कपूर सिंह जी ने कहा कि सिंहों की बातों को प्रेमपूर्वक स्वीकार करें। इन्होंने मुझे नवाबी दी हैं क्या पता कल को ये तुम्हें बादशाही बक्शें। यही आगे जाकर सत्य हुआ। नवाब कपूर सिंह जी सन् 1753 में अपना भौतिक शरीर छोड़कर अकाल चलाणा कर गए। उन्होंने पंथ की जत्थेदारी जस्सा सिंह आहलुवालिया जी (जिनके पूर्वज मद्य उत्पादन करने वाले वंचित वर्ग से थे) को सौंपी। जोकि आगे जाकर सुलतान उल कौम जस्सा सिंह आहलुवालिया के नाम से लाहौर के प्रसिद्ध शासक हुए। नवाब कपूर सिंह जी की निजी मिसल के जत्थेदार इनके भतीजे भाई खुशहाल सिंह हुए। नवाब कपूर सिंह जी का अन्तिम संस्कार श्री अमृतसर साहिब में किया गया। पटियाला क्षेत्र का ग्राम कपूरगढ़ इनके नाम पर ही है। नवाब कपूर सिंह जी धर्म प्रचार में भी सदैव अग्रणीय रहे। इन्होंने विभिन्न वर्गों में धर्म का प्रचार किया एवं कई प्राणियों को अमृतधारी भी बनाया। ●

भाई गुरदास जी की वार में समसमायिक परिस्थितियों का चित्रण

बहु वाटी जगि चलीआ तब ही भए मुहंमदि यारा ।
कउमि बहतरि संगि करि बहु बिधि वैरु विरोधु पसारा ।
रोजे ईद निमाजि करि करमी बंदि कीआ संसारा ।
पीर पैकंबरि अउलीए गउसि कुतब बहु भेख सवारा ।
ठाकुर दुआरे ढाहि कै तिहि ठउड़ी मासीति उसारा ।
मारनि गऊ गरीब नो धरती उपरि पापु बिथारा ।
काफरि मुलहदि इरमनी रूमी जंगी दुसमणि दारा ।
पापे दा वरतिआ वरतारा ॥ (वारां भाई गुरदास १/२०)

संत सिपाही भाई महाराज सिंह जी - अभिषेक पुरोहित

भाई महाराज सिंह जी की जन्म गांव रब्बो जिला लुधियाना (पंजाब) में हुआ। इनके जन्म का नाम निहाल सिंह था। बाल्य अवस्था में ही बाबा वीर सिंह नौरंगाबाद, जोकि भाई धर्मसिंह सम्प्रदाय के निर्मले थे, की शरण में आ गए। उन्होंने इन्हें अमृतपान कराया और इनका नाम भगवान सिंह रखा। जब बाबा बीर सिंह जी अकाल चलाणा कर गए तो उनके स्थान पर भाई भगवान सिंह जी विराजमान हुए। इसने आश्रम में एक प्रकार की सैन्य व्यवस्था होती थी जिसमें लगभग 1200 बन्दूकची एवं 3000 घुड़सवार होते थे।

सन् 1847 ई. में जब अंग्रेजों ने रानी जिन्दा को देश निकाला दिया तो सिख सरदारों ने विद्रोह किया। जिनमें भाई भगवान सिंह प्रमुख थे। चूंकि लोग इन्हें सम्मानपूर्वक महाराज जी कहते थे इस कारण इनका नाम महाराज सिंह प्रसिद्ध हो गया। इनके क्रांतिकारी गतिविधियों में प्रेमा षड्यंत्र भी शामिल है। जहां पर इन्होंने ब्रिटिश रेजीडेंट हैनरी लॉरेंस एवं अन्य ब्रिटिश पक्षीय लाहौर दरबार के पदाधिकारियों की हत्या की योजना बनाई थी। जिस कारण इनको नौरंगाबाद में नजरबंद कर दिया गया। यह कुछ समय बाद नजरबंदी से छूटकर भूमिगत हो गए। सरकार ने इनके सिर पर ईनाम रखा और इनकी अमृतसर स्थित सम्पत्ति कुर्क कर ली। अप्रैल सन् 1848 में दीवान मूलराज जी ने अंग्रेजों के विरुद्ध मुलतान में विद्रोह किया। भाई महाराज सिंह जी 400 घुड़सवार लेकर उनकी सहायता के लिए मुलतान पहुंचे। किन्तु कुछ मतभेदों के कारण वह मुलतान छोड़कर जून 1848 में चतर सिंह अटारीवाला के पास हजारा आ गए और उनसे ब्रिटिश हुकूमत के खात्मे की निजी योजनाओं के लिए सहयोग मांगा।

नवम्बर 1848 में वह रामनगर के युद्ध में राजा शेर सिंह जी की फौज से जा मिले। युद्ध में वह काली घोड़ी पर सवार होकर योद्धाओं को प्राणोत्सर्ग की प्रेरणा देते रहे। साथ जी साथ इस युद्ध में एवं आने वाले युद्धों में सेना की रसदापूर्ति का पर्यवेक्षण एवं उसका प्रबंधन भी करते रहे। आने वाले समय में उन्होंने चेलियांवाला एवं गुजरात के युद्ध में भी भाग लिया। अन्ततः 14 मार्च 1849 को राजा शेर सिंह ने ब्रिटिश सेना के सम्मुख आत्म समर्पण कर दिया। अन्य सिख सरदारों ने भी या तो समर्पण किया या वे बन्दी बना लिए गए। इस पर भी भाई महाराज सिंह जी ने अंग्रेजों के विरुद्ध अपना संघर्ष अकेले ही जारी रखा। आगे भाई महाराज सिंह जी जम्मू की ओर चले गए एवं देव बटाला को अपना गुप्त मुख्यालय बनाया।

यह अंग्रेजों द्वारा पंजाब पर अधिकार करने के बाद उनके विरुद्ध स्वाधीनता संग्राम करने वाले सर्वप्रथम सिख योद्धा है। उन्होंने 1849 में यह कहा कि अब एक अन्य राष्ट्रीय युद्ध होने वाला है और सभी सच्चे सिख उस तिथि को एक साथ विपल्व में भाग लें। अंग्रेजों ने इनके सिर पर 10 हजार रुपए का इनाम रखा।

भाई महाराज सिंह जी की अंग्रेजों को को उखाड़ फैंकने की योजना चम्ब घाटी के वनों में बनाई गई। उसके मुख्य बिन्दू थे-

1. महाराजा दिलीप सिंह जी को लाहौर किले से सकुशल बाहर निकालना।

2. अंग्रेजों के विरुद्ध ब्रिटिश विरोधी शक्तियों का सांझा मंच बनाना।

3. अंग्रेज खजानों एवं छावनियों पर अचानक से हमला करना एवं उनके मार्ग में व्यवधान उत्पन्न करना तथा अन्य तोड़फोड़ की कार्यों को अन्जाम देना।

इन सब कठिन परिस्थितियों में भी उनकी आध्यात्मिक शक्ति एवं धरोहर ने उनको सतत् संघर्ष करने की प्रेरणा दी। उन्होंने अद्वितीय सैन्य नेतृत्व एवं युद्ध कला का व्यवहारिक प्रयोग किया।

अंग्रेजों ने अपनी प्रतिक्रिया स्वरूप दिलीप सिंह जी को इनसे सुरक्षित क्षेत्र में भेज दिया एवं कुछ मुस्लिम कट्टरवादियों को भाई साहब के संबंध में जानकारी देने पर बहुत बड़ा ईनाम देने का लालच दिया। इसी प्रकार इनके सैनिक नेतृत्व को एक साम्प्रदायिक रूप देने की कुचेष्टा की। किन्तु यह एक चमत्कारी महापुरुष के रूप में प्रसिद्ध होते गए। जनसाधारण ने इनको असीम सहयोग दिया। जिससे पकड़ पाना शासन के लिए अत्यधिक कठिन हो गया। अन्ततः 28 दिसम्बर 1849 को ये अपने 21 निहत्थे साथियों के साथ आदमपुर के निकट पुलिस के द्वारा बन्दी बना लिए गए। उस समय के अंग्रेज अधिकारियों ने इनकी एवं इनके सैनिकों की तुलना प्रभु यीशु तक से कर दी।

अंग्रेजों ने इनका भारत में रखना खतरनाक माना और इन्हें सिंगापुर की जेल में स्थानान्तरित किया। यह मोहम्मद शाह नामक जहाज से 9 जुलाई 1850 को अपने सेवक खड़कसिंह के साथ सिंहापुर पहुंचे और ओटरम कारागृह में रखे गए। इनके रहने की कारागार 14 x 15 फीट का एक बहुत ही नरकीय परिस्थिति वाला था। खिड़कियां काफी ऊपर थी, अंधेरा था, सीलन थी और स्वास्थ्य के लिए पूर्णतः अनउपयुक्त था। तीन वर्षों में भाई साहब आंखों से अंधे हो गए। जीह्वा के कर्क रोग से भी पीड़ित हुए। पैर, एडियां इत्यादि में सूजन हो गई। सिंगापुर के नागरिक शल्य चिकित्सक ने इनको खुले स्थान में चहल कदमी करने की सलाह दी। जिसे भारत सरकार ने ठुकरा दिया। इसके कारणवंश इनका स्वास्थ्य निरन्तर बिगड़ता गया। मृत्यु से दो माह पूर्व इनका गला एवं जीह्वा इस प्रकार सूज गई, जिसके कारण खाना निगल पाना बहुत कठिन हो गया।

भाई महाराज सिंह जी का देहान्त 5 जुलाई 1856 को हुआ। इनका अन्तिम संस्कार कदाचित खड़कसिंह जी के द्वारा जेल के बाहर एक भूखण्ड पर किया गया। उस स्थान की स्थानीय हिन्दु तमिलों ने एक पूजा स्थान के रूप में सेवा प्रारम्भ कर दी। वहां पुष्प अर्पण करने हेतु सिख एवं मुस्लिम भी हाजिरी भरने लगे। सिखों ने उस स्थान पर एक ढांचा तैयार किया। 1966 में सिलत रोड पूजा स्थल में श्री गुरुग्रंथ साहिब जी का प्रकाश हुआ। आज वहां सिख एवं अन्य बन्धु भारी तादाद में हाजरी भरते हैं।●